

लघु

पंचपरमाणम् विधान संग्रह

विधान चतुष्टय सहित



सर्वज्ञदेव विधान

सहज शान्ति विधान

श्रुतपंचमी विधान

तत्त्वार्थसूत्र विधान

अष्टपाहुड़ विधान

पंचास्तिकाय विधान

नियमसार विधान

प्रवचनसार विधान

समयसार विधान

- अभ्यकुमार जैन

॥ जिनपूजन जिन-वचन पठन, दोनों का अपूर्व संगम ॥

श्रीमद् आचार्य कुन्दकुन्ददेव प्रणीत पंच परमागमों पर आधारित

लघु
पंचपरमागम विधान संग्रह
एवं

विधानचतुष्टय

(तत्त्वार्थसूत्र विधान, श्रुतपंचमी विधान,
सर्वज्ञदेव विधान एवं सहज शान्ति विधान)

लेखन एवं संपादन
पण्डित अभयकुमार जैन
जैनदर्शनाचार्य, देवलाली

प्रकाशक
सर्वोदय आहिंसा, जयपुर

सज्जा/मुद्रण : प्री ऐलविल सन (संजय शास्त्री), जयपुर फोन : + 91 95092 32733

संस्करण प्रथम - 2200 प्रतियाँ, 15 फरवरी 2020

संस्करण द्वितीय - 2200 प्रतियाँ, 16 जुलाई 2021 (अष्टाहिनका महापर्व)

न्यौछावर राशि - 50 रुपये (पुनः प्रकाशन हेतु)

प्रस्तुत कृति के प्रकाशन एवं प्रचार हेतु प्राप्त सहयोग

25000/- श्री शान्तिलालजी मूथा, कोलकाता

11000/- आचार्य कुन्दकुन्द दिग. जैन वीतराग विज्ञान मंडल, जबलपुर

11000/- श्री माणेकचन्द्रजी जैन, मलाड-मुम्बई

11000/- श्री जयन्त जैन, रतलाम

11000/- श्री भूपेन्द्र हिम्मतलाल शाह, देवलाली

11000/- गुप्तदान - एक आत्मार्थी भाई, देवलाली

11000/- नेहल जैन संतोष कुमार जैन, बैंगलुरु

5101/- श्री वैभवकुमार मोदी, मकरोनिया-सागर

5101/- श्री आशुतोष-अंकिंचन मोदी, मकरोनिया-सागर

5100/- सेठ गुलाबचन्द्रजी, सुभाष ट्रांसपोर्ट, सागर

5100/- श्री मनोजजी शास्त्री (शाहगढ़), सागर

5100/- श्री सुनीलकुमारजी सरफ, सागर

2000/- श्री सुदर्शनजी जैन (बण्डा वाले), सागर

1000/- पण्डित निर्मलकुमारजी जैन, सागर

प्राप्ति-स्थान...

* तीर्थधाम सिद्धायतन

श्री गुरुदत्त कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट

सेंधपा (द्रोणगिरि) जिला-छतरपुर (म.प्र.) +91 99776 14254

* श्री आचार्य कुन्दकुन्द दिगम्बर जैन वीतराग विज्ञान मंडल

पायल वाला मार्केट, बड़ा फुहरा, जबलपुर (म.प्र.) +91 94246 65900

* पूज्य श्री कानजी स्वामी स्मारक ट्रस्ट

कहान नगर, लाम रोड, देवलाली, नासिक (महा.)

* सर्वोदय अहिंसा

बी. 180 मंगल मार्ग, बापू नगर, जयपुर-15 +91 9785 999100

प्रकाशकीय

अध्यात्मरसिक पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री, देवलाली द्वारा रचित नौ लघु विधानों का संग्रह प्रकाशित करते हुए हम गौरवान्वित हैं।

पण्डित अभयकुमारजी को सोलह वर्ष की अल्प वय में पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी एवं उनके निकटवर्ती विद्वद्वर्य श्री रामजीभाई, खीमचन्दभाई आदि विद्वानों के समागम का पुण्य अवसर प्राप्त हुआ है। डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के निकट रहकर जैन-दर्शन के तलस्पर्शी अध्ययन का अवसर भी उन्हें 1977 से उपलब्ध हुआ है। इसी के फलस्वरूप उन्होंने अपना समग्र जीवन प्रवचन-लेखन आदि के माध्यम से शासन-प्रभावना में समर्पित किया है। उनके द्वारा रचित भक्ति सरोवर, पंच बालयति पूजन एवं 30 ग्रन्थों के पद्यानुवाद में प्रवाहित अध्यात्म रस से मुमुक्षु समाज लाभान्वित हो ही रहा है।

सर्वोदय अहिंसा ट्रस्ट ने प्राचीन आचार्यों/विद्वानों के अनेक अनुपलब्धप्राय ग्रन्थों को कम्प्यूटराइज्ड करके उनके प्रकाशन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आगे भी कई ग्रन्थ प्रकाशन हेतु तैयार हैं। इसके साथ ही वर्तमान में उपयोगी अनेक विधानों आदि का प्रकाशन भी ट्रस्ट द्वारा निरंतर किया जा रहा है। सर्वोदय अहिंसा अभियान के माध्यम से अहिंसा-शाकाहार के प्रचार के क्षेत्र में भी अपूर्व कार्य कर रहा है। साथ ही तीर्थकरों/आचार्यों की वाणी को प्रतिपादित करनेवाले सिद्धान्तों को सुंदर साज-सज्जा के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है। सर्वोदय अहिंसा यूट्यूब चैनल पर सैकड़ों पूजन-स्तुति-भजन-पाठों के संगीतमय शब्द सहित वीडियो का लाभ हजारों लोग प्रतिदिन ले रहे हैं।

आशा है, सम्पूर्ण जैन समाज प्रस्तुत कृति के माध्यम से पंचपरमागम, तत्त्वार्थसूत्र आदि का मर्म समझते हुए, देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति से लाभान्वित होते हुए सहज शान्ति के मार्ग पर अग्रसर होगा। इस कृति के प्रकाशन हेतु सहयोगी दान-दाताओं के भी हम अत्यन्त आभारी हैं।

समस्त ट्रस्टीगण
सर्वोदय अहिंसा ट्रस्ट, जयपुर

(4) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

अहोभाग्य

लघु विधानाष्टक रचूँ मैं अहो! यह अवसर मिला।
देव-गुरु-श्रुत भक्ति का सुरभित सुमन उर-सर खिला॥
भक्ति पूजा स्तवन के पात्र में अब हम सभी।
श्रुत-सिन्धु में सु-स्नान कर चैतन्य-रस पीयें अभी॥

आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी की महती कृपा के फलस्वरूप प्राप्त तत्त्वज्ञान, मेरे जीवन की एकमात्र उपलब्धि है। उनकी प्रेरणा से प्राप्त श्रुताभ्यास ने सहज ही मेरे भीतर प्रवचनकार को जन्म दे दिया; परन्तु कभी भक्ति-पूजन-विधान की रचना में भी निमित्त बनँगा - यह सोचा भी न था। मेरी पूज्य माताजी द्वारा सिंचित् संस्कारों के फलस्वरूप 18 वर्ष की उम्र से ही मेरे द्वारा भक्ति-गीतों की रचना होने लगी थी, जिसे जयपुर आने के पश्चात् माननीय डॉ. हुकमचन्द्रजी भारिल्ल की प्रेरणा से और भी अधिक बल मिला।

सन् 2000 में जबलपुर में निर्मित महावीर जिनालय के निमित्त से एवं ब्र. सन्ध्याबेन के प्रोत्साहन से ‘पंच बालयति पूजन’ की रचना भी हो गई, किन्तु कोई विधान रचने की इच्छा कभी उत्पन्न नहीं हुई। कुछ वर्षों पूर्व ‘लघु तत्त्व-स्फोट विधान’ लिखने का विचार अवश्य हुआ था, परन्तु आगे नहीं बढ़ सका। सहज ही ऐसी परिस्थितियाँ बनीं, जिनके कारण मन में यह भावना बलवती होने लगी कि कुछ ऐसे विधानों की रचना हो, जिनमें भक्ति-स्तुति के पात्र में अध्यात्म रस इस प्रकार घोला जाये, जो आचार्य समन्तभद्र, आचार्य अमृतचन्द्र, आचार्य पद्मनन्दी, पण्डित आशाधरजी आदि की शैली के अनुरूप हों।

फरवरी 2016 में तीर्थधाम सिद्धायतन (द्रोणगिरि) में ‘समयसार शिविर एवं समयसार विधान’ के आयोजन करने का प्रसंग बना। उस समय मेरे प्रिय मित्र पण्डित राकेशजी जैन शास्त्री, नागपुर वालों की प्रबल प्रेरणा रही कि

अन्य लेखकों की कृतियों का सम्पादन करने के स्थान पर आप स्वतन्त्र विधान रचना करें तो आगामी पीढ़ी के लेखकों को भी आवश्यक मार्गदर्शन प्राप्त होगा तथा स्वाध्याय रसिक समाज को भी स्वाध्याय और भक्ति का विशेष लाभ प्राप्त हो सकेगा। आदरणीय ब्र. जतीशभाईजी ने भी मुझे इस कार्य हेतु प्रोत्साहित किया।

डॉ. राकेशजी ने तो ‘समयसार विधान’ लिखने की प्रेरणा दी ही थी, तत्सम्बन्धी रीति-नीति के बारे में भी बहुत चर्चा की थी, जिससे मेरा मानस भी तैयार हो गया था कि इसी बीच सूचना मिली कि टोडरमल स्मारक के स्वर्ण-जयन्ती वर्ष के उपलक्ष्य में मान्यवर डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल स्वयं श्री समयसार विधान की रचना कर रहे हैं। डॉ. साहब के गहन चिन्तन से प्रसूत समयसार का पद्यानुवाद, अनुशीलन एवं टीका की शृंखला में अब ‘श्री समयसार विधान’ मुमुक्षु समाज के लिए एक अनुपम भेट होगा; अतः श्री समयसार विधान लिखने का मेरा विचार स्थगित हो गया।

तीर्थधाम सिद्धायतन में ‘श्री समयसार शिविर-विधान’ के अवसर पर ही ‘श्री प्रवचनसार शिविर-विधान’ की घोषणा हो गई थी; अतः प्रवचनसार विधान के लेखन का भाव उदित हो गया, जिसके निमित्त से गत वर्ष 8 मई 2016 को यह ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका है।

यह भी एक सहज और सुखद संयोग है कि मेरे विद्या-गुरु विद्वत्-शिरोमणि डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल भी अपनी प्रतिभा, क्षमता एवं लेखन शैली का उपयोग इस विधा में करने हेतु संकल्पित हो गये हैं। उनके इस संकल्प का ज्ञान मुझे तब हुआ, जब उन्होंने देवलाली में पूज्य गुरुदेवश्री की 128वीं जन्म-जयन्ती के अवसर पर नियमसार विधान लिखे जाने की सूचना दी। समाज के लिए तो यह ऐतिहासिक संयोग अत्यन्त लाभदायक है कि शिष्य और गुरु के हृदय में एक ही जाति के उमड़ते भक्ति-भावों के फलस्वरूप उसे एक ही विषय की दो-दो रचनाओं के रसापान करने का अवसर मिल रहा है।

(6) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

अप्रासंगिक विस्तार से रहित तथा ग्रन्थ की मूल भावना एवं भक्ति की मर्यादा अक्षुण्ण रखते हुए ग्रन्थाधारित अनेक विधानों की परम्परा का विकास हो – इसी भावना से इन विधानों की रचना करने का साहस कर पाता हूँ। इन विधानों में विराम चिह्न (,) का प्रयोग जहाँ अर्थ स्पष्ट करने में सहायक लगा है, वहाँ किया गया है; न कि छन्द-रचना के आधार पर। विधान पढ़ते समय आचार्यदेव विरचित ग्रन्थ की मूल गाथाओं का पाठ भी किया जाए तो अति उत्तम है।

एक ही विषय की दो रचनाएँ होने पर भी खीर और हलुवे के समान दोनों का स्वाद अलग-अलग है। दादा की लेखन शैली में जो सरलता, सहजता और मौलिकता का स्वाद है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। मैंने तो अधिकांश विधान में गाथाओं और कलशों के मूलानुगामी अनुवाद का ही उपयोग किया है, जिसमें मेरी कोई मौलिकता नहीं है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए मैं स्वयं को लेखक के साथ-साथ संकलनकर्ता लिखना अधिक उचित समझता हूँ।

विधान लिखते समय मेरा ग्रन्थ की विषय-वस्तु एवं उसके मूल प्रतिपाद्य विषय का गहन परिचय हुआ, जिसे मैं अपना महान सौभाग्य समझता हूँ। इस अवसर पर सैकड़ों विधान-पूजनों के रचयिता पण्डित राजमलजी पवैया का स्मरण किये बिना भी नहीं रह सकता, जिनके साथ अनेक विधानों के रचना-काल में काम करने का मुझे अवसर मिला, जिससे मेरे हृदय में विधान-लेखन का बीजारोपण होता गया।

इस अवसर पर अपने प्रिय विद्यार्थी संजय शास्त्री (बड़ामलहरा/जयपुर) को भी याद किये बिना नहीं रह सकता, जिसने मेरी भावना के अनुसार इस रचना को सुन्दर भौतिकरूप प्रदान करने के साथ-साथ लेखन में भी बहुमूल्य सुझाव दिये और प्रवचनसार विधान लिखते समय ‘कुन्दकुन्दाचार्य पूजन’ लिखने की प्रेरणा भी दी, जो संयोगवशात् गत वर्ष पूज्य गुरुदेवश्री के जन्म-दिवस पर प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में सम्पन्न हुई। यह भी मेरे जीवन की स्वर्णिम उपलब्धि हो गई। संजय ने यह भी सूचित किया कि आजकल लोग गृह-

प्रवेश एवं विवाहादि प्रसंगों के लिए एक-डेढ़ घंटे के विधान अधिक पसंद करते हैं, अतः नियमसारादि सभी विधानों का संक्षिप्त रूपान्तर भी करना चाहिए। तीन लघु विधान तो ‘विधानत्रय’ के रूप में प्रकाशित हो चुके थे, शेष तीन परमाणुओं के संक्षिप्त रूपान्तर तथा श्रुतपंचमी एवं शान्ति विधानों का जन्म भी हो गया; इसप्रकार का संक्षिप्त रूपान्तर करने से 8 लघु विधानों की रचना हो गई, जिन्हें एक ही पुस्तक में प्रकाशित करना उचित लगा।

अनेक साधर्मी शान्तिविधान लिखने का भी आग्रह करते थे, अतः विचार हुआ कि मौलिक-आध्यात्मिक चिन्तन की दृष्टि से शान्ति विधान लिखने का प्रयास किया जाये, जो 8 जनवरी 2020 को सनावद (म.प्र.) में जन्मकल्याणक के दिन साकार हो सका। इसप्रकार यह आठ विधानों का संग्रह आपके कर-कमलों के माध्यम से देव-गुरु-धर्म की भक्ति में समर्पित है।

ग्रन्थ-आधारित विधानों की उपयोगिता

लगभग 50 वर्षों से मुमुक्षु समाज कविवर राजमलजी पवैया कृत सैकड़ों भजन-पूजन-विधानों का आनन्द ले रहा है; उन्होंने समयसार आदि ग्रन्थों पर आधारित अनेक विधानों की रचना भी की है। किसी ग्रन्थ की विषय-वस्तु पर आधारित विधान लिखने का यह नया प्रयोग था; अतः अनेक विद्वानों को थोड़ा अटपटा भी लगा और उन्होंने व्यक्तिगत चर्चाओं में इस परम्परा से असहमति भी व्यक्त की, परन्तु समाज ने इस पद्धति में ग्रन्थ का स्वाध्याय और पूजन-भक्ति आदि का लाभ देखकर इनका भी स्वागत करते हुए, इनका भरपूर लाभ लेना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार ग्रन्थ-आधारित विधान रचनाओं की परम्परा का विकास हुआ।

इन विधानों से असहमति के पक्ष में एक ही बात सामने आई कि इनकी क्या आवश्यकता है? पूर्ववर्ती किसी विद्वान ने तो ऐसे विधान नहीं लिखे?

— उक्त बिन्दुओं पर गहराई से विचार किया जाए तो यह तथ्य स्पष्ट होता है कि आवश्यकता का कोई मापदण्ड तो है नहीं। प्रत्येक लेखक को

(8) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

अपने राग के अनुसार लिखने का भाव होता है। समाज में भी जिसे जो पसन्द होता है, वह उसे अपना लेता है। पूर्ववर्ती परम्पराओं का विचार करें तो ‘अष्ट द्रव्य की परम्परा’ या अन्य पूजन-विधान जब भी रचे गये होंगे, नये ही होंगे; तब भी यही बात उठी होगी।

अतः नई-पुरानी परम्परा पर ऊहापोह करने के बजाय इस बिन्दु पर विचार होना चाहिए कि कोई भी कार्य, वीतरागता का पोषक या आगम की मूल भावना के अनुकूल है या नहीं?

- उक्त बिन्दु पर विचार किया जाए तो स्पष्ट होता है कि देव-शास्त्र-गुरु की पूजा, शास्त्र/सरस्वती पूजा, ‘जिनगृहे जिनसूत्रमहं यजे’ - कहकर जिन सूत्रों को अर्घ्य समर्पित करने की परम्परा, दशलक्षण पर्व में तत्वार्थसूत्र का वाचन करके प्रत्येक अध्याय के अन्त में अर्घ्य समर्पित करने की परम्परा, समाज में सैकड़ों वर्षों से विद्यमान है ही; अतः ग्रन्थों को आधार बनाकर पूजन-विधान किये जायें तो कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

हाँ, यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि नये प्रयोग के लोभ में पूजन-विधान का मूल भाव तिरोभूत न हो जाए। देव-शास्त्र-गुरु के उपकारों की गंगा के साथ ही अध्यात्म की यमुना और सिद्धान्त की सरस्वती प्रवाहित होना चाहिए। ध्यान रहे कि देव-गुरु-शास्त्र के गुणानुवाद का भाव तिरोभूत करके हम स्वयं तत्त्वोपदेशक या गीतकार न बन जाएँ।

जैसे कविवर संतलालजी कृत सिद्धुचक्र विधान, पण्डित आशाधरजी कृत रत्नत्रय विधान एवं कविवर राजमलजी पवैया कृत इन्द्रध्वज विधान, एक सौ सत्तर तीर्थकर विधान, पंचमेरु-नन्दीश्वर विधान आदि अनेक कृतियाँ उपर्युक्त कसौटी पर खरी उतरती हुई आदर्श के रूप में हमारे सामने उपस्थित हैं।

यही आदर्श-परम्परा विकसित हो तथा समाज को भक्ति रस के साथ-साथ ग्रन्थ की विषय-वस्तु का परिज्ञान करते हुए सम्पूर्ण ग्रन्थ का टीका सहित स्वाध्याय करने की प्रेरणा मिले - इसी पवित्र भावना से मैंने इस दिशा में कदम बढ़ाया है। इसी शृंखला में लघु तत्त्व-स्फोट, समयसार कलश आदि

विधानों की रचना करने का भी भाव है, जो भवितव्यतानुसार यथासमय पूरा होगा।

सभी साधर्मी जनों से विशेष अनुरोध है कि इस कृति की भाषा-शैली, विषय-वस्तु का आनन्द लेते हुए अपने सुझावों से अवगत कराने का कष्ट अवश्य करें, ताकि आगामी सम्भावित रचनाओं में उनका लाभ ले सकूँ।

आशा है कि अष्टाहिनका पर्व के अवसर पर प्रतिदिन एक विधान का तथा अन्य अवसरों पर किन्हीं एक या अधिक विधानों के माध्यम से साधर्मी जन ज्ञान-वैराग्य का पोषण करके आत्महित की ओर अग्रसर होंगे।

इस कृति के प्रकाशन के पश्चात् मार्च 2020 से कोरोना महामारी का अप्रत्याशित दौर प्रारम्भ हो गया, परन्तु इंटरनेट के माध्यम से हजारों लोग पूजन, विधान एवं प्रवचनों का लाभ लेने लगे। इस समय धार्मिक, सामाजिक, पारिवारिक आदि सभी कार्यक्रम ऑनलाइन ही सम्पन्न होने का एक नया युग प्रारम्भ हो गया।

इसी शृंखला में अगस्त 2020 में मुमुक्षु मण्डल, मकरोनिया-सागर में ‘सर्वज्ञता’ विषय पर संगोष्ठी का आयोजन किया गया। श्री अरुणजी मोदी सागर, श्री राकेशजी शास्त्री नागपुर एवं संजय शास्त्री (सर्वोदय अहिंसा) की प्रेरणा एवं सुझावों के आधार पर सर्वज्ञदेव विधान का जन्म हुआ, जिसे इस कृति में सम्मिलित करके नौ लघु विधानों का संग्रह आपके समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है।

अन्त में यही भावना है कि इन विधानों के माध्यम से अधिकतम लोग भक्ति-पूजन के रस सहित जिनागम के गहन अवगाहन हेतु मूल ग्रन्थों के स्वाध्याय हेतु अवश्य प्रेरित होंगे। इत्यलम्...।

मंगलवार, 15 जून 2021
श्रुत पंचमी

अभयकुमार जैन
देवलाली, नासिक

... अनुक्रमणिका ...

क्या ?	कहाँ ?
1. अहोभाग्य	4
2. मंगलाचरण	11
3. चौबीस तीर्थकर स्तवन	12
4. बीस तीर्थकर स्तवन	14
5. प्रतिमा प्रक्षाल पाठ	16
6. विनय पाठ	20
7. पूजा पीठिका	21
8. श्री देव-शास्त्र-गुरु पूजन	24
9. श्री पंच बालयति जिन पूजन	28
10. श्री दिव्यध्वनि/वीरशासन जयन्ती पूजन	32
11. श्री कुन्दकुन्दाचार्य पूजन	37
12. श्री अमृतचन्द्राचार्य पूजन	42
13. श्री जयसेनाचार्य पूजन	47
14. श्री समयसार परमागम विधान	52
15. श्री प्रवचनसार परमागम विधान	71
16. श्री नियमसार परमागम विधान	93
17. श्री पंचास्तिकाय संग्रह परमागम विधान	124
18. श्री अष्टपाहुड परमागम विधान	146
19. श्री तत्त्वार्थसूत्र विधान	168
20. श्री षट्खण्डागम/श्रुतपंचमी विधान	190
21. श्री सर्वज्ञदेव विधान	209
22. श्री सहज शान्ति विधान	220
23. महार्घ्य	237
24. शान्ति पाठ एवं क्षमा-याचना	238

ॐ

मंगलाचरण

(वीरछन्द)

श्री अरहन्त सदा मंगलमय, मुक्ति-मार्ग का करें प्रकाश।
मंगलमय श्री सिद्ध प्रभू जो निजस्वरूप में करें विलास।
शुद्धात्म के मंगल साधक, साधु पुरुष की सदा शरण हो।
धन्य घड़ी वह धन्य दिवस जब मंगलमय मंगलाचरण हो॥

मंगलमय चैतन्य स्वरों में, परिणति की मंगलमय लय हो।
पुण्य-पाप की दुखमय ज्वाला, निज-आश्रय से शीघ्र विलय हो।
देव-शास्त्र-गुरु को बन्दन कर, मुक्ति-वधू का त्वरित वरण हो।
धन्य घड़ी वह धन्य दिवस जब मंगलमय मंगलाचरण हो॥

मंगलमय पाँचों कल्याणक मंगलमय जिनका जीवन है।
मंगलमय वाणी सुखकारी शाश्वत सुख की भव्य सदन है।
मंगलमय सत्धर्म तीर्थ-कर्ता की मुझको सदा शरण हो।
धन्य घड़ी वह धन्य दिवस जब मंगलमय मंगलाचरण हो॥

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरणमय मुक्ति-मार्ग मंगलदायक है।
सर्व पाप-मल का क्षय करके, शाश्वत सुख का उत्पादक है।
मंगल गुण-पर्यायमयी चैतन्यराज की सदा शरण हो।
धन्य घड़ी वह धन्य दिवस जब मंगलमय मंगलाचरण हो॥

(12) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

चौबीस तीर्थकर स्तवन

जो अनादि से व्यक्त नहीं था त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक भाव।
वह युगादि में किया प्रकाशित वन्दन ऋषभ जिनेश्वर राव॥1॥

जिसने जीत लिया त्रिभुवन को मोह शत्रु वह प्रबल महान।
उसे जीतकर शिवपद पाया वन्दन अजितनाथ भगवान॥2॥

काललब्धि बिन सदा असम्भव निज सन्मुखता का पुरुषार्थ।
संभव जिनवर ने स्वकाल में प्रकट किया सम्यक् पुरुषार्थ॥3॥

त्रिभुवन जिनके चरणों का अभिनन्दन करता तीनों काल।
वे स्वभाव का अभिनन्दन कर पहुँचे शिवपुर में तत्काल॥4॥

निज आश्रय से ही सुख होता यही सुमति जिन बतलाते।
सुमतिनाथ प्रभु की पूजन कर भव्य जीव शिवसुख पाते॥5॥

पद्मप्रभ के पद-पंकज की सौरभ से सुरभित त्रिभुवन।
गुण अनन्त के सुमनों से शोभित श्री जिनवर का उपवन॥6॥

श्री सुपाश्वर्के शुभ सु-पाश्वर्में जिनकी परिणति करे विराम।
वे पाते हैं गुण अनन्त से भूषित सिद्ध सदन अभिराम॥7॥

चारु चन्द्र-सम सदा सुशीतल चेतन चन्द्रप्रभ जिनराज।
गुण अनन्त की कला विभूषित प्रभु ने पाया निजपद राज॥8॥

पुष्पदन्त-सम गुण आवलि से सदा सुशोभित हैं भगवान।
मोक्षमार्ग की सुविधि बताकर भविजन का करते कल्याण॥9॥

चन्द्र-किरण सम शीतल वचनों से हरते जग का आताप।
स्याद्वादमय दिव्यध्वनि से मोक्षमार्ग बतलाते आप॥10॥

त्रिभुवन के श्रेयस्कर हैं श्रेयांसनाथ जिनवर गुणखान।
निज स्वभाव ही परम श्रेय का केन्द्र बिन्दु कहते भगवान॥11॥

शत इन्द्रों से पूजित जग में वासुपूज्य जिनराज महान।
स्वाश्रित परिणति द्वारा पूजित पंचम भाव गुणों की खान॥12॥

निर्मल भावों से भूषित हैं जिनवर **विमलनाथ** भगवान।
 राग-द्वेष मल का क्षय करके पाया सौख्य अनन्त महान॥13॥

गुण अनन्तपति की महिमा से मोहित है यह त्रिभुवन आज।
 जिन अनन्त को वन्दन करके पाऊँ शिवपुर का साप्राज्य॥14॥

वस्तु-स्वभाव धर्मधारक हैं धर्म धुरन्धर नाथ महान।
 ध्रुव की धुनमय धर्म प्रकट कर वन्दित धर्मनाथ भगवान॥15॥

रागरूप अंगारों द्वारा दहक रहा जग का परिणाम।
 किन्तु शान्तिमय निजपरिणति से शोभित शान्तिनाथ भगवान॥16॥

कुन्थु आदि जीवों की भी रक्षा का जो देते उपदेश।
 स्व-चतुष्टय में सदा सुरक्षित कुन्थुनाथ जिनवर परमेश॥17॥

पंचेन्द्रिय विषयों से सुख की अभिलाषा है जिनकी अस्त।
 धन्य-धन्य अरनाथ जिनेश्वर राग-द्वेष अरि किए परास्त॥18॥

मोह-मल्ल पर विजय प्राप्त कर जो हैं त्रिभुवन में विख्यात।
 मल्लिनाथ जिन समवसरण में सदा सुशोभित हैं दिन रात॥19॥

तीन कषाय चौकड़ी जयकर मुनि-सु-ब्रत के धारी हैं।
 वन्दन जिनवर मुनिसुब्रत जो भविजन को हितकारी हैं॥20॥

नमि जिनवर ने निज में नमकर पाया केवलज्ञान महान।
 मन-वच-तन से करूँ नमन सर्वज्ञ जिनेश्वर हैं गुणखान॥21॥

धर्म-धुरा के धारक जिनवर धर्म-तीर्थ रथ संचालक।
 नेमिनाथ जिनराज वचन नित भव्यजनों के हैं पालक॥22॥

जो शरणागत भव्यजनों को कर लेते हैं आप समान।
 ऐसे अनुपम अद्वितीय पारस हैं पाश्वर्णाथ भगवान॥23॥

महावीर सन्मति के धारक वीर और अतिवीर महान।
 चरण-कमल का अभिनन्दन है वन्दन वर्धमान भगवान॥24॥

(14) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

विदेहक्षेत्र-स्थित बीस तीर्थकर स्तवन

स्वचतुष्टय की सीमा में, सीमित हैं सीमन्धर भगवान।
किन्तु असीमित ज्ञानानन्द से सदा सुशोभित हैं गुणखान॥1॥

युगल धर्मय वस्तु बताते नय-प्रमाण भी उभय कहे।
युगमन्धर के चरण-युगल में, दर्श-ज्ञान मम सदा रसे॥2॥

दर्शन-ज्ञान बाहुबल धरकर, महाबली हैं बाहु जिनेन्द्र।
मोह-शत्रु को किया पराजित शीश झुकाते हैं शत इन्द्र॥3॥

जो सामान्य-विशेष रूप उपयोग सुबाहु सदा धरते।
श्री सुबाहु के चरण-कमल में भविजन नित वन्दन करते॥4॥

शुद्ध स्वच्छ चेतनता ही है जिनकी सम्यक् जाति महान।
अन्तर्मुख परिणति में लखते वन्दन संजातक भगवान॥5॥

निज स्वभाव से स्वयं प्रकट होती है जिनकी प्रभा महान।
लोकालोक प्रकाशित होता धन्य स्वयंप्रभ प्रभु का ज्ञान॥6॥

चेतनरूप वृषभमय आनन से जिनकी होती पहचान।
वृषभानन प्रभु के चरणों में नमकर परिणति बने महान॥7॥

वीर्य अनन्त प्रकट कर प्रभुवर भोगें निज आनन्द महान।
ज्ञान लखें ज्ञेयाकारों में धन्य अनन्तवीर्य भगवान॥8॥

सूर्य-प्रभा भी फीकी पड़ती ऐसी चेतन प्रभा महान-
धारण कर जिनराज सूर्यप्रभ देते जग को सम्यज्ञान॥9॥

अहो विशाल कीर्ति धारण कर शत इन्द्रों से वन्दित हैं।
श्री विशालकीर्ति जिनवर नित, त्रिभुवन से अभिनन्दित हैं॥10॥

स्वानुभूतिमय वत्र धार कर, मोह शत्रु पर किया प्रहार।
 वन्दन करुँ वज्रधर जिन को, भोगें नित आनन्द अपार॥11॥

चारुचन्द्र-सम आनन जिनका, हरण करे जग का आताप।
 चन्द्रानन जिन चरण-कमल में प्रक्षालित हों सारे पाप॥12॥

दर्शन-ज्ञान सुबाहु भद्र लख, भद्र भव्य भूलें आताप।
 वन्दन भद्रबाहु जिनवर को मोह नष्ट हो अपने आप॥13॥

गुण अनन्त वैभव के धारी, सदा भुजंगम जिन परमेश।
 जिनकी विषय-विरक्त वृत्ति लख भोग-भुजंग हुए निस्तेज॥14॥

हे ईश्वर! जग को दिखलाते निज में ही निज का ऐश्वर्य।
 निज-परिणति में प्रकट हुए हैं, दर्शन-ज्ञान-वीर्य-सुख कार्य॥15॥

निज-वैभव की परम प्रभा से, शोभित नेमप्रभ जिनराज।
 ध्रुव की धुनमय धर्मधुरा से, पाया गुण अनन्त साम्राज्य॥16॥

परम अहिंसामय परिणति से शोभित वीरसेन भगवान।
 गुण अनन्त की सेना में हो व्याप्त द्रव्य तुम वीर महान॥17॥

सहज सरल स्वाभाविक गुण से भूषित महाभद्र भगवान।
 भद्र जनों द्वारा पूजित हैं, अतः श्रेष्ठ हैं भद्र महान॥18॥

गुण अनंत की सौरभ से है जिनका यश त्रिभुवन में व्याप्त।
 धन्य-धन्य जिनराज यशोधर एक मात्र शिवपथ में आप्त॥19॥

मोह शत्रु से अविजित रहकर, अजितवीर्य के धारी हैं।
 वन्दन अजितवीर्य जिनवर जो त्रिभुवन के उपकारी हैं॥20॥

(16) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

॥ प्रतिमा प्रक्षाल पाठ ॥¹

(दोहा)

परिणामों की स्वच्छता, के निमित्त जिनबिम्ब ।
इसीलिए मैं निरखता, इनमें निज प्रतिबिम्ब ॥
पंच प्रभु के चरण में, वन्दन करूँ त्रिकाल ।
निर्मल जल से कर रहा, प्रतिमा का प्रक्षाल ॥

अथ पौर्वाह्निक-देव-वन्दनायां पूर्वाचार्यनुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजा-
स्तवन-वन्दना-समेतं श्री पंचमहागुरु-भक्तिपूर्वक-कायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

(नौ बार णमोकार मन्त्र का स्मरण करें)

(छप्पय)

तीन लोक के कृत्रिम और अकृत्रिम सारे ।
जिनबिम्बों को नित प्रति अगणित नमन हमारे ॥
श्री जिनवर की अन्तर्मुख छवि उर में धारूँ ।
जिन में निज का निज में जिन-प्रतिबिम्ब निहारूँ ॥
मैं करूँ आज संकल्प शुभ, जिन प्रतिमा प्रक्षाल का ।
यह भाव-सुमन अर्पण करूँ, फल चाहूँ गुणमाल का ॥
ॐ ह्रीं प्रक्षाल-प्रतिज्ञायै पुष्पांजलिं क्षिपामि / क्षिपेत्²

(प्रक्षाल करने की प्रतिज्ञा हेतु पुष्प-क्षेपण करें)

(रोला)

अन्तरंग बहिरंग सुलक्ष्मी से जो शोभित ।
जिनकी मंगल वाणी पर है त्रिभुवन मोहित ॥
श्री जिनवर-सेवा से क्षय मोहादि विपत्ति ।
हे जिन! ‘श्री’ लिख पाऊँगा निज-गुण सम्पत्ति ॥
(शाली की चौकी पर केशर से ‘श्री’ लिखें)

1. सूचना – पण्डित राजमलजी पवैया कृत संक्षिप्त अभिषेक पाठ, पृष्ठ 13 पर है।

2. स्वयं चढ़ाते समय ‘क्षिपामि’ एवं दूसरों को निर्देश देते समय ‘क्षिपेत्’ बोलना चाहिए।

अन्तर्मुख मुद्रा सहित, शोभित श्री जिनराज ।
प्रतिमा प्रक्षालन करूँ, धरूँ पीठ यह आज ॥
ॐ ह्रीं श्री पीठ-स्थापनं करोमि ।

(प्रक्षाल हेतु थाली स्थापित करें)

(रोला)

भक्ति रत्न से जड़ित आज मंगल सिंहासन ।
भेद-ज्ञान-जल से क्षालित भावों का आसन ॥
स्वागत है जिनराज! तुम्हारा सिंहासन पर ।
हे जिनदेव! पधारो श्रद्धा के आसन पर ॥

ॐ ह्रीं श्री धर्मतीर्थाधिनाथ भगवन्हि सिंहासने तिष्ठ तिष्ठ ।

(थाली में जिनबिम्ब विराजमान करें)

क्षीरोदधि के जल से भरे कलश ले आया ।
दृग्-सुख-वीरज ज्ञानस्वरूपी आतम पाया ॥
मंगल कलश विराजित करता हूँ जिनराजा ।
परिणामों के प्रक्षालन से सुधरें काजा ॥

ॐ ह्रीं अर्ह कलशस्थापनं करोमि ।

(चारों कोनों में निर्मल जल से भरे कलश स्थापित करें)

जल-फल आठों द्रव्य मिलाकर अर्घ्य बनाया ।
अष्ट अंग युत मानो सम्यग्दर्शन पाया ॥
श्री जिनवर के चरणों में यह अर्घ्य समर्पित ।
करूँ आज रागादि विकारी भाव विसर्जित ॥

ॐ ह्रीं श्री स्नपन-पीठ-स्थित-जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(पीठ स्थित जिन-प्रतिमा को अर्घ्य चढ़ायें)

मैं रागादि विभावों से कलुषित है जिनवर ।
और आप परिपूर्ण वीतरागी हो प्रभुवर ॥
कैसे हो प्रक्षाल, जगत के अघ-क्षालक का ।
क्या दरिद्र होगा पालक? त्रिभुवन पालक का ॥

(18) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

भक्ति भाव के निर्मल जल से अघ-मल धोता ।

है किसका अभिषेक भ्रान्त चित खाता गोता ॥
नाथ! भक्तिवश जिन-बिम्बों का करूँ न्हवन मैं।

आज करूँ साक्षात् जिनेश्वर का पर्शन मैं ॥

ॐ हीं श्रीमन्तं भगवन्तं कृपालसन्तं वृषभादिमहावीरपर्यन्तं चतुर्विंशतितीर्थकर-
परमदेवमाद्यानामाद्ये जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे.....नामिनगरे मासानामुत्तमे
.....मासे.....पक्षे.....दिने मुन्यार्थिकाश्रावकश्राविकाणां
सकलकर्मक्षयार्थं पवित्रतरजलेन जिनमभिषेचयामि ।

(चारों कलशों से अभिषेक करें, वादिन नाद करायें व जय-जय शब्दोच्चारण करें)

(दोहा)

क्षीरोदधि-सम नीर से, करूँ बिम्ब प्रक्षाल ।

श्री जिनवर की भक्ति से, जानूँ निज पर चाल ॥
तीर्थकर का न्हन शुभ, सुरपति करें महान ।

पंचमेरु भी हो गये, महातीर्थ सुखदान ॥
करता हूँ शुभ भाव से, प्रतिमा का अभिषेक ।

बच्चूँ शुभाशुभ भाव से, यही कामना एक ॥
जल-फलादि वसु द्रव्य ले, मैं पूजूँ जिनराज ।

हुआ बिम्ब अभिषेक अब, पाऊँ निज पदराज ॥

ॐ हीं अभिषेकान्ते वृषभादिवीरान्तेभ्योऽर्थं निर्वपामीति स्वाहा ।

श्री जिनवर का धवल यश, त्रिभुवन में है व्याप्त ।
शान्ति करें मम चित्त में, हे परमेश्वर आप्त ॥

इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत ।

(रोला)

जिन प्रतिमा पर अमृतसम जल-कण अति शोभित ।

आत्म-गगन में गुण अनन्त तरे भवि मोहित ॥
हो अभेद का लक्ष्य भेद का करता वर्जन ।

शुद्ध वस्त्र से जल-कण का करता परिमार्जन ॥

(प्रतिमा को शुद्ध वस्त्र से पोछें)

(दोहा)

श्री जिनवर की भक्ति से, दूर होय भव-भार ।
उर-सिंहासन थापिये, प्रिय चैतन्य कुमार ॥

(जिनप्रतिमा को सिंहासन पर विराजमान करें)

जल-गन्धादिक द्रव्य से, पूजूँ श्री जिनराज ।
पूर्ण अर्द्ध अर्पित करूँ, पाऊँ चेतनराज ॥
ॐ हर्षी श्री पीठस्थितजिनाय अनर्थपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा ।

(दोहा)

जिन संस्पर्शित नीर यह, गन्धोदक गुण खान ।
मस्तक पर धारूँ सदा, बनूँ स्वयं भगवान ॥
(मस्तक पर गन्धोदक धारण करें; अन्य किसी अंग से
गन्धोदक-स्पर्श वर्जित है ।)

श्री जिनेन्द्र अभिषेक पाठ

(कविवर श्री राजमलजी पवैया कृत)

मैं परम पूज्य जिनेन्द्र प्रभु को, भाव से बन्दन करूँ।
मन वचन काय त्रियोग पूर्वक, शीश चरणों में धरूँ ॥1॥
सर्वज्ञ केवलज्ञान धारी, की सुछवि उर में धरूँ।
निर्ग्रन्थ पावन वीतराग, महान की जय उच्चरूँ ॥2॥
उज्ज्वल दिगम्बर वेश दर्शन, कर हृदय आनन्द भरूँ।
अति विनय पूर्वक न्हन करके, सफल यह नरभव करूँ ॥3॥
मैं शुद्ध जल के कलश प्रभु के, पूज्य मस्तक पर ढरूँ।
जल-धार देकर हर्ष से, अभिषेक प्रभुजी का करूँ ॥4॥
मैं न्हन प्रभु का भाव से कर, सकल भव पातक हरूँ।
प्रभु चरण-कमल पखार कर, सम्यक्त्व की सम्पत्ति वरूँ ॥5॥

(20) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

विनय पाठ/मंगल दशक

आतम-हित में निमित हैं नव पद मंगलकार।
विनय सहित वंदन करूँ होऊँ भव से पार॥1॥

दर्श ज्ञान सुख वीर्य में विलसें श्री अरहन्त।
लोकालोक निहारते वन्दूँ जिन भगवन्त॥2॥

द्रव्य-भाव-नोकर्म बिन अशरीरी भगवान।
गुण अनन्तमय राजते वन्दूँ सिद्ध महान॥3॥

साधु संघ सिरमौर हैं संघ नायक आचार्य।
गुण छत्तीस सु-शोभते सार्थे निज परमार्थ॥4॥

द्वादशांग से शोभता है जिनका श्रुतज्ञान।
पढ़ें पढ़ावें अन्य को पाठक चरण-प्रणाम॥5॥

रत्नत्रयमय साधना से शिवसुख है साध्य।
अट्ठाइस गुण धारते साधु परम आराध्य॥6॥

अनेकान्त प्रतिपादनी दिव्यध्वनि ॐकार।
स्याद्वाद वाणी करे संशय तिमिर निवार॥7॥

त्रिभुवन को सुखकार है वीतरागमय धर्म।
स्वानुभूति परिणाम में बसे धर्म का मर्म॥8॥

अन्तर्मुख मुद्रा अहो परम शान्ति सुख पिण्ड।
निज स्वरूप दरशावते नमो नमो जिनबिम्ब॥9॥

समवसरण-सम शोभता जिनमन्दिर सुखकार।
जिनदर्शन से प्राप्त हो निज दर्शन भव-तार॥10॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

पूजा पीठिका

ॐ जय जय जय ! नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु !
णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्ञायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥
ॐ ह्रीं अनादिमूलमन्त्रेभ्यो नमः पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत् ॥

(वीरछन्द)

नमस्कार हो अरहन्तों को, सिद्धों को आचार्यों को।
नमूँ उपाध्यायों को, वन्दूँ जग के सब मुनिराजों को ॥1॥
मंगल चार जगत में, श्री अरहन्त सिद्ध प्रभु मंगल हैं।
साधु मंगल और केवली-भाषित धर्म सुमंगल हैं ॥2॥
उत्तम चार लोक में हैं अरहन्त सिद्ध प्रभु उत्तम हैं।
साधु लोक में उत्तम जिनवर-कथित धर्म सर्वोत्तम है ॥3॥
शरण चार हैं मुझे, श्री अरहन्त सिद्ध की शरण गहूँ।
साधु-शरण मैं पाऊँ, केवलि-कथित धर्म की शरण लहूँ ॥4॥

ॐ नमोऽर्हते स्वाहा पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत् ॥

मंगल विधान

तन-मन होवें स्वस्थ तथा अस्वस्थ अपावन या पावन।
पंच-प्रभु के पद-पंकज का ध्यान करे अघ-प्रक्षालन ॥1॥
सुख-दुख हों या अन्य कोई भी हों प्रसंग इस नर-भव में।
यदि परमात्मा की छवि मन में बाह्यान्तर शुचि जीवन में ॥2॥
अहो! मन्त्र यह अपराजित है सब विघ्नों का करे विनाश।
सर्व मंगलों में यह पहला मंगल करता पूर्ण विकाश ॥3॥

1. स्वयं चढ़ाते समय ‘क्षिपामि’ एवं दूसरों को निर्देश देते समय ‘क्षिपेत्’ बोलना चाहिए।

(22) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

अहो! पंच यह नमस्कार है सब पापों का करे विनाश।
सर्व मंगलों में पहला मंगल सुखदायक अघ-क्षयकार॥4॥

आत्मब्रह्म का वाचक अथवा परमेष्ठी पद का वाचक।
सिद्धचक्र के बीजभूत अर्ह अक्षर का मैं ध्यायक॥5॥

अष्ट कर्म से मुक्त हुए जो मुक्तिश्री के भव्य सदन।
सम्यक्त्वादि गुणों से भूषित सिद्धचक्र को करुँ नमन॥6॥

विघ्न-समूह, शाकिनी एवं भूत सर्प हों नष्ट सभी।
विष भी हो जाता है निर्विष स्तुति करें जिनेश्वर की॥7॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

॥ जिनसहस्रनाम के लिए अर्ध्य ॥

जल चन्दन अक्षत सुपुष्प चरु दीप धूप फल अर्ध्य धरुँ।
मंगल धवल गान गुंजित जिनगृह में श्री जिननाम भजूँ॥1॥

ॐ ह्रीं श्री भगवज्जिनसहस्राष्ट्रनामेभ्योऽर्ध्यं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ पूजा प्रतिज्ञा पाठ ॥

तीन लोक के स्वामी हैं जो स्याद्वाद विद्या नायक।
अनन्त चतुष्टय भूषित श्री जिनवर चरणों में बंदन कर॥

श्री जिनेन्द्र की पूजन विधि प्रारम्भ करुँ मन-वच-तन से।
जिससे मूल-संघ के सम्यग्दृष्टि पुण्य अर्जन करते॥1॥

तीन लोक के गुरु मुनीश जिन-भगवन्तों को स्वस्ति सदा।
स्वाभाविक महिमोदय से सुस्थित उनका कल्याण सदा॥

सहज प्रकाश सुविकसित दर्श-अनंत विभूषित जिनवर को।
सुन्दर अद्भुत वैभवशाली जिनवर स्वस्ति प्रदायक हों॥2॥

अहो! उछलती ज्ञानामृत लहरों में डूब रहे जिनराज।
स्वस्ति सदा जो निज एवं पर के स्वभाव का करें प्रकाश॥

तीन लोक में व्याप्त एक चैतन्य प्रकाशक जिनवर को।
 त्रैकालिक पदार्थ में व्याप्त जिनेश्वर को नित स्वस्ति हो॥13॥

देश-काल अनुरूप जलादिक शुद्ध द्रव्य लेकर आया।
 भाव-शुद्धि मम पूर्ण प्रकट हो मात्र यही है अभिलाषा॥
 दर्शन स्तवन आदि विविध गतिविधियों का ले अवलंबन।
 भूतार्थरूप से पूज्य अर्हतादिक की करता मैं पूजन॥14॥

हे अर्हन्! पुराण पुरुषोत्तम पावन परमात्मा जिनराज।
 जल फलादि इन सभी वस्तुओं का अवलंबन लेकर आज-
 इन सबमें सुख-बुद्धि तजूँ मैं, केवलज्ञान-अग्नि में आज-
 होम करूँ मैं सकल पुण्य का हो एकाग्र-चित्त मैं आज॥15॥

ॐ हीं यज्ञविधिप्रतिज्ञायै पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्।

॥ स्वस्ति मंगल पाठ ॥

मंगलमय श्री ऋषभ जिनेश्वर मंगल अजितनाथ जिनराज।
 मंगलमय श्री संभव जिनवर मंगल अभिनंदन महाराज॥
 सुमति पद्मप्रभ श्री सुपार्श्व जिन मंगल चन्द्रप्रभ जिनराज।
 पुष्पदन्त शीतल श्रेयांस प्रभु वासुपूज्य गुण गाऊँ आज॥11॥

विमल अनन्त सदा मंगलमय धर्म जिनेश्वर शान्ति जिनेन्द्र।
 कुन्थुनाथ अरनाथ मल्लि जिन मुनिसुव्रत वंदित शत इन्द्र॥
 मंगलमय नमि नेमिनाथ प्रभु पार्श्वनाथ श्री वीर जिनेश।
 हम सबको मंगलस्वरूप हों स्वस्तिप्रदायक जिन परमेश॥12॥

(दोहा)

संस्कृत पूजा पीठिका का यह लेकर भाव।

जिन-पूजन संकल्प में उछले भक्ति-भाव॥13॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

(24) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

॥ श्री देव-शास्त्र-गुरु पूजन ॥

स्थापना

(चान्द्रायण)

शिव-सुख दर्शक देव श्री अर्हन्त हैं।
दोष अठारह रहित प्रभु भगवंत हैं॥
लोकालोक झलकते प्रभु के ज्ञान में।
लीन रहें प्रभु चिदानंद रसपान में॥

ॐकारमय वाणी मोह विनाशती।
शुद्ध बुद्ध चैतन्य स्वरूप प्रकाशती॥
दिव्यध्वनि सुन गणधर श्रुत रचना करें।
संशय विभ्रम मोह भव्यजन का हरें॥

शिवपथ पंथी गुरुवर जग हितकार हैं।
आत्मसाधना जिनकी मंगलकार है॥
सर्वारम्भ परिग्रह तज निर्भार हैं।
श्री गुरु पद-पंकज सौरभ सुखकार हैं॥

(दोहा)

देव शास्त्र गुरु उर बसें तो प्रकटे शुद्धात्म।
भाव सहित वन्दूं सदा पूजूँ पद परमात्म॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र अवतर अवतर संवैषट् ।

(इति आहवानम्।)

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः । (इति
स्थापनम्।)

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।
(इति सन्निधिकरणम्।) (इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

(हरिगीतिका)

प्रभु-भक्ति निर्मल नीर से मैं मोह-मल क्षालित करूँ।

सम्यक्त्व नौका चढ़ प्रभो! अब शीघ्र भव-सागर तरूँ॥

श्रद्धान में जिनदेव हों श्रुतज्ञान में जिन-वच बसें।

निर्ग्रन्थ गुरु के पंथ चल लोकाग्र में हम जा बसें॥

ॐ हीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जलं
निर्वपामीति स्वाहा।

चैतन्य-सौरभ नित महकती द्रव्य-गुण-पर्याय में।

प्रभुभक्ति मलयज कर समर्पित भव्य भव-आतप नशें॥

श्रद्धान में जिनदेव हों श्रुतज्ञान में जिन-वच बसें।

निर्ग्रन्थ गुरु के पंथ चल लोकाग्र में हम जा बसें॥

ॐ हीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा।

जिनराज सूत्र अखंड मिथ्या-वादि मद खंडित करें।

श्रद्धान अर्पित कर अखंडित भव्य अक्षय पद वरें॥

श्रद्धान में जिनदेव हों श्रुतज्ञान में जिन-वच बसें।

निर्ग्रन्थ गुरु के पंथ चल लोकाग्र में हम जा बसें॥

ॐ हीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि. स्वाहा।

जिनभक्ति-सुरभित सुमन भविजन-भ्रमर चित्त लुभावते।

निष्काम जिन-आराधना कर काम-दाह विनाशते॥

श्रद्धान में जिनदेव हों श्रुतज्ञान में जिन-वच बसें।

निर्ग्रन्थ गुरु के पंथ चल लोकाग्र में हम जा बसें॥

ॐ हीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं
निर्वपामीति स्वाहा।

जिनभक्ति रस के रसिकजन को क्यों क्षुधा पीड़ित करे।

चैतन्य रस में तृप्त हो भवरोग शीघ्र शमित करें॥

(26) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

श्रद्धान में जिनदेव हों श्रुतज्ञान में जिन-वच बसें।

निर्ग्रन्थ गुरु के पंथ चल लोकाग्र में हम जा बसें॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः क्षुधारोगविध्वंसनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

जिनश्रुत भवन में ज्ञान-दीपक मोह-तिमिर विनाशता।

श्रद्धान ज्ञान चरित्र में वह चित् स्वरूप निहारता॥

श्रद्धान में जिनदेव हों श्रुतज्ञान में जिन-वच बसें।

निर्ग्रन्थ गुरु के पंथ चल लोकाग्र में हम जा बसें॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

शुद्धात्म तत्त्व सुध्येय की ध्यानाग्नि भवि प्रजलित करें।

आराधना निष्काम प्रकटे कर्म-मल सब क्षय करें॥

श्रद्धान में जिनदेव हों श्रुतज्ञान में जिन-वच बसें।

निर्ग्रन्थ गुरु के पंथ चल लोकाग्र में हम जा बसें॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं नि. स्वाहा।

जिनभक्तिरस सिंचित सुपरिणति सुतरु में शिवफल फलें।

चैतन्य रसमय स्वानुभव से पुण्य-फल वांछा टले॥

श्रद्धान में जिनदेव हों श्रुतज्ञान में जिन-वच बसें।

निर्ग्रन्थ गुरु के पंथ चल लोकाग्र में हम जा बसें॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

द्रव्य-श्रुत आराधना अर्पण करूँ यह अर्द्ध्य है।

रत्नत्रय वैभव प्रदाता देव-गुरु अन् अर्द्ध्य हैं॥

श्रद्धान में जिनदेव हों श्रुतज्ञान में जिन-वच बसें।

निर्ग्रन्थ गुरु के पंथ चल लोकाग्र में हम जा बसें॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्द्धपदप्राप्तये अर्द्ध्य नि. स्वाहा।

जयमाला

दोहा

श्रद्धा-ज्ञान-चरित्र के दाता जिन-श्रुत-सन्त।

निर्मल निज परिणाम में बसें सदा निर्ग्रन्थ॥

(रोला)

अनन्त चतुष्टय भूषित अरहन्तों को बन्दूँ।
मोक्षमार्ग के नेता जिनवर को अभिनन्दूँ॥
त्रिविध कर्ममल रहित सिद्ध मम ज्ञान-मुकुर में-
झालकें सदा, किन्तु प्रभु रहते स्वचतुष्टय में॥1॥

रत्नत्रय से भूषित परम दिग्म्बर गुरु हैं।
ज्ञान ध्यान तप लीन परिग्रह से विरहित हैं॥
क्षण-क्षण में अंतर्मुख हो चित् रस पीते हैं।
निजाधीन निर्भार साधना में जीते हैं॥2॥

निर्ग्रन्थों के ग्रन्थ जगत में मंगलकारी।
तीर्थकर का विरह भुलाती श्री जिनवाणी॥
स्याद्वाद से अनेकान्तमय वस्तु बताती।
निश्चय अरु व्यवहार कथन शिवपथ का करती॥3॥

देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा यदि सम्यक् होती।
आत्मतत्त्व में अपनेपन का निमित कहाती॥
निर्विकल्प निश्चय समकित का प्रतिपादक है।
समकित का व्यवहार जगत मंगलकारक है॥4॥

देव-शास्त्र-गुरु बसें निरन्तर मेरे उर में।
ज्ञानानन्द स्वभाव सदा वर्ते मम रुचि में॥
अहो! परम उपकार जगत में देव गुरु का।
जिन-वच से जाने स्वरूप सारा जग उनका॥5॥

दोहा

देव-शास्त्र-गुरु भक्ति है, अघ-नाशक सुखकार।
भक्ति-गगन में बरसती स्वानुभूति रसधार॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला-पूर्णार्घ्य
निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्पांजलि क्षिपामि/क्षिपेत्

(28) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

श्री पंच बालयति जिन-पूजन

(हरिगीतिका)

निज ब्रह्म में नित लीन परिणति से सुशोभित हे प्रभो ।

पूजित परम निज पारिणामिक से विभूषित हे विभो ॥

अब आओ तिष्ठे अत्र तुम सन्निकट हो मुझमय अहो ।

श्री बालयति पाँचों प्रभु को वन्दना शत बार हो ॥

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य-मल्लि-नेमि-पाश्व-वीरा: पंचबालयतिजिनेन्द्राः !
अत्र अवतर अवतर संवैषट् ।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य-मल्लि-नेमि-पाश्व-वीरा: पंचबालयतिजिनेन्द्राः !
अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य-मल्लि-नेमि-पाश्व-वीरा: पंचबालयतिजिनेन्द्राः !
अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

(वीरछन्द)

हे प्रभु ! ध्रुव की ध्रुव परिणति के पावन जल में कर स्नान ।

शुद्ध अतीन्द्रिय आनन्द का तुम करो निरतन अमृत-पान ॥

क्षणवर्ती पर्यायों का तो जन्म-मरण है नित्य स्वभाव ।

पंच बालयति-चरणों में हो तन-संयोग-वियोग अभाव ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि.स्वा ।

अहो ! सुगन्धित चेतन प्रभु की परिणति में नित महक रहा ।

क्षणवर्ती चैतन्य विवर्तन की ग्रन्थि में चहक रहा ॥

द्रव्य, और गुण पर्यायों में सदा महकती चेतन गन्ध ।

पंच बालयति के चरणों में नाशूँ राग-द्रेष दुर्गन्ध ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि.स्वाहा ।

परिणामों के ध्रुव प्रवाह में बहे अखण्डित ज्ञायक भाव ।

द्रव्य-क्षेत्र अरु काल-भाव में नित्य अभेद अखण्ड स्वभाव ॥

निज गुण-पर्यायों में जिनका अक्षय पद अविचल अभिराम ।

पंच बालयति जिनवर मेरी परिणति में नित करो विराम ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि. स्वाहा ।

गुण अनन्त के सुमनों से हो शोभित तुम ज्ञायक उद्यान ।

त्रैकालिक ध्रुव परिणति में तुम प्रतिपल करते नित्य विराम ॥

इसके आश्रय से प्रभु तुमने नष्ट किया है काम-कलंक ।

पंच बालयति के चरणों में धुला आज परिणति का पंक ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यः कामबाणविनाशनाय पुष्पं नि.स्वाहा ।

हे प्रभु ! अपने ध्रुव प्रवाह में रहो निरन्तर शाश्वत तृप्त ।

षट्रूस की क्या चाह तुम्हें तुम निज रस के अनुभव में मस्त ॥

तृप्त हुई अब मेरी परिणति ज्ञायक में करती विश्राम ।

पंच बालयति के चरणों में क्षुधा-रोग का रहा न नाम ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि.स्वाहा ।

सहज ज्ञानमय ज्योति प्रज्वलित रहती ज्ञायक के आधार ।

प्रभो ! ज्ञान-दर्पण में त्रिभुवन पल-पल होता ज्ञेयाकार ॥

अहो ! निरखती मम श्रुत-परिणति अपने में तब केवलज्ञान ।

पंच बालयति के प्रसाद से प्रकट हुआ निज ज्ञायक भान ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि.स्वाहा ।

त्रैकालिक परिणति में व्यापी ज्ञान-सूर्य की निर्मल धूप ।

जिससे सकल-कर्म-मल क्षय कर हुए प्रभो ! तुम त्रिभुवन भूप ॥

मैं ध्याता तुम ध्येय हमारे मैं हूँ तुममय एकाकार ।

पंच बालयति जिनवर ! मेरे शीघ्र नशो अब त्रिविध विकार ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो अष्टकर्मविनाशनाय धूपं नि.स्वाहा ।

सहज ज्ञान का ध्रुव प्रवाह फल सदा भोगता चेतनराज ।

अपनी चित् परिणति में रमता पुण्य-पाप फल का क्या काज ॥

(30) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

महा मोक्षफल की न कामना शेष रहे अब हे जिनराज ।
पंच बालयति के चरणों में जीवन सफल हुआ है आज ॥
ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं नि.स्वाहा ।
पंचम परमभाव की पूजित परिणति में जो करें विराम ।
कारण परमपारिणामिक का अवलम्बन लेते अभिराम ॥
वासुपूज्य अरु मल्लि-नेमिप्रभु-पाश्वनाथ-सन्मति गुणखान ।
अर्ध्य समर्पित पंच बालयति को पंचम गति लहूँ महान ॥
ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो अनर्ध्यपदप्राप्तये अर्ध्य नि.स्वाहा ।

जयमाला

(दोहा)

पंच बालयति नित बसो, मैरे हृदय मँझार ।
जिनके उर में बस रहा, प्रिय चैतन्य कुमार ॥1॥

(छप्पय)

प्रिय चैतन्य कुमार सदा, परिणति में राजे ।
पर-परिणति से भिन्न सदा, निज में अनुरागे ॥
दर्शन-ज्ञानमयी उपयोग, सुलक्षण शोभित ।
जिसकी निर्मलता पर आतम-ज्ञानी मोहित ॥
ज्ञायक त्रैकालिक बालयति, मम परिणति में व्याप्त हो ।
मैं नमूँ बालयति पंच को, पंचम-गति-पद प्राप्त हो ॥2॥

(वीरछन्द)

धन्य-धन्य हे वासुपूज्य जिन! गुण अनन्त में करो निवास ।
निज आश्रित परिणति में शाश्वत, महक रही चैतन्य-सुवास ॥
सत् सामान्य सदा लखते हो, क्षायिकदर्शन से अविराम ।
तेरे दर्शन से निज दर्शन, पाकर हर्षित हूँ गुणखान ॥3॥

श्री पंच बालयति जिन-पूजन (31)

मोह-मल्ल पर विजय प्राप्त कर, महाबली हे मल्लि जिनेश !!
निज-गुण-परिणति में शोभित हो, शाश्वत मल्लिनाथ परमेश !!
प्रतिपल लोकालोक निरखते, केवलज्ञान-स्वरूप चिदेश।
विकसित हो चित् लोक हमारा, तब किरणों से सदा दिनेश ॥14॥

राजमती तज नेमि जिनेश्वर! शाश्वत सुख में लीन सदा।
भोक्ता-भोग्य विकल्प विलय कर, निज में निज का भोग सदा॥
मोह रहित निर्मल परिणति में, करते प्रभुवर सदा विराम।
गुण अनन्त का स्वाद तुम्हारे, सुख में बसता है अविराम ॥15॥

जिनका आत्म-पराक्रम लख कर कमठ शत्रु भी हुआ परास्त।
क्षायिक-श्रेणी-आरोहण कर मोह-शत्रु को किया विनष्ट॥
पाश्वर्वनाथ के चरण-युगल में, क्यों बसता यह सर्प कहो।
बल अनन्त लखकर जिनवर का, चूर कर्म का दर्प अहो! ॥16॥

क्षायिक दर्शन-ज्ञान-वीर्य से, शोभित हैं सन्मति भगवान।
भरतक्षेत्र के शासन-नायक, अन्तिम तीर्थकर सुखखान ॥
विश्व-सरोज प्रकाशक जिनवर, हो केवल-मार्तण्ड महान।
अर्घ्य समर्पित चरण-कमल में, वन्दन वर्धमान भगवान ॥17॥

ॐ ह्रीं श्री पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला-अर्घ्य
निर्वपामीति स्वाहा ।

(सोरठा)

पंचम भाव स्वरूप, पंच बालयति को नमूँ।
पाऊँ शुद्ध स्वरूप निज, कारण परिणाममय ॥
(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

(32) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

श्री दिव्यध्वनि/वीरशासन जयन्ती पूजन

स्थापना (मरहठा माधवी)

धन्य धन्य सावन बदि एकम वाणी खिरी महान है।
वीर प्रभु के शुभ-शासन का हुआ सुमंगल गान है॥
केवलज्ञान हुआ प्रभुजी को समवसरण रचना हुई।
छ्यासठ दिन पश्चात् प्रभु की मंगलमय वाणी खिरी॥

सप्त तत्त्व अरु नव पदार्थ में हम सब चेतन द्रव्य हैं।
दर्श-ज्ञान-चारित्र एक ही सच्चे सुख का पंथ है॥
स्वानुभूति में सदा प्रकाशित ज्ञायक आनंद धाम है।
उदित हुआ कैवल्य किरण से सम्यग्ज्ञान महान है॥

(दोहा)

आप्त-वचन दिखला रहे, भविजन को शिवपंथ।

आह्वानन थापन करूँ, नमूँ पंथ निर्गन्थ॥

ॐ ह्रीं श्री ! शासननायक-तीर्थकरवर्धमान-मुखोदभूतदिव्यध्वनि! अत्र अवतर
अवतर संवौषट्। (इति आह्वानम्।)

ॐ ह्रीं श्री शासननायक-तीर्थकरवर्धमान-मुखोदभूतदिव्यध्वनि! अत्र तिष्ठ तिष्ठ
ठः ठः। (इति स्थापनम्।)

ॐ ह्रीं श्री शासननायक-तीर्थकरवर्धमान-मुखोदभूतदिव्यध्वनि! अत्र मम
सन्निहितो भव भव वषट्। (इति सन्निधिकरणम्।)

अष्टक

(हरिगीतिका)

ॐकार ध्वनि की भक्ति-जल से मोह का प्रक्षाल कर।

अर्पित करूँ प्रभु-चरण में जन्मादि रोग विनाश कर॥

जयवंत वर्ते वीर-शासन प्रभु! हमारे ज्ञान में।

शिवपंथ शाश्वत है यही नित वर्तता श्रद्धान में॥

श्री वीरशासन जयन्ती पूजन (33)

ॐ हीं श्री शासननायक-तीर्थकरवर्धमान-मुखोदभूतदिव्यध्वनये
जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्-अक्षरी वाणी प्रभु की ताप हरती जगत का।

स्वानुभव शीतल सुधा-रसमय वचन खिरते सदा॥

जयवंत वर्ते वीर-शासन प्रभु! हमारे ज्ञान में।

शिवपंथ शाश्वत है यही नित वर्तता श्रद्धान में॥

ॐ हीं श्री शासननायक-तीर्थकरवर्धमान-मुखोदभूतदिव्यध्वनये संसारताप-
विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

स्याद्वाद कौशल से सदा अक्षत सुशासन आपका।

मम ज्ञान-श्रद्धा हो अखंडित नाश कर मिथ्यात्व का॥

जयवंत वर्ते वीर-शासन प्रभु! हमारे ज्ञान में।

शिवपंथ शाश्वत है यही नित वर्तता श्रद्धान में॥

ॐ हीं श्री शासननायक-तीर्थकरवर्धमान-मुखोदभूतदिव्यध्वनये
अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

हे वीर! तव निष्काम भक्ति काम-रोग विनाशती।

ये काम-शर अर्पित चरण में ब्रह्म-भाव प्रकाशती॥

जयवंत वर्ते वीर-शासन प्रभु! हमारे ज्ञान में।

शिवपंथ शाश्वत है यही नित वर्तता श्रद्धान में॥

ॐ हीं श्री शासननायक-तीर्थकरवर्धमान-मुखोदभूतदिव्यध्वनये विध्वंसनाय
पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वानुभूति-रस भरी वाणी प्रभु की अब सुनूँ।

आनन्द-अमृत पान कर प्रभु! चिर क्षुधा-व्याधि हरूँ॥

जयवंत वर्ते वीर-शासन प्रभु! हमारे ज्ञान में।

शिवपंथ शाश्वत है यही नित वर्तता श्रद्धान में॥

ॐ हीं श्री शासननायक-तीर्थकरवर्धमान-मुखोदभूतदिव्यध्वनये क्षुधारोग-
विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(34) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

हे नाथ! तेरे वचन भी निज-पर प्रकाश सदा करें।

श्रुतज्ञान-दीपक से भविक चिर मोह-तम का क्षय करें॥

जयवंत वर्ते वीर-शासन प्रभु! हमारे ज्ञान में।

शिवपंथ शाश्वत है यही नित वर्तता श्रद्धान में॥

ॐ ह्रीं श्री शासननायक-तीर्थकरवर्धमान-मुखोद्भूतदिव्यध्वनये मोहान्धकार-
विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु-वचन सौरभ व्याप्त हो त्रयलोक रूपी भवन में।

दुर्गन्ध मिथ्या मतों की कैसे रहे इस सदन में॥

जयवंत वर्ते वीर-शासन प्रभु! हमारे ज्ञान में।

शिवपंथ शाश्वत है यही नित वर्तता श्रद्धान में॥

ॐ ह्रीं श्री शासननायक-तीर्थकरवर्धमान-मुखोद्भूतदिव्यध्वनये अष्टकर्मदहनाय
धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु-वीर-वाणी वृक्ष पर आनंदमय शिवफल फलें।

मैं पुण्य-फल अर्पित करूँ शुद्धात्म ज्ञान सुफल मिलें॥

जयवंत वर्ते वीर-शासन प्रभु! हमारे ज्ञान में।

शिवपंथ शाश्वत है यही नित वर्तता श्रद्धान में॥

ॐ ह्रीं श्री शासननायक-तीर्थकरवर्धमान-मुखोद्भूतदिव्यध्वनये मोक्षफलप्राप्तये
फलं निर्वपामीति स्वाहा।

यह स्वानुभूति-रस भरी वाणी महा अनमोल है।

हम भक्ति-अर्घ्य करें समर्पित आज जाना मोल है॥

जयवंत वर्ते वीर-शासन प्रभु! हमारे ज्ञान में।

शिवपंथ शाश्वत है यही नित वर्तता श्रद्धान में॥

ॐ ह्रीं श्री शासननायक-तीर्थकरवर्धमान-मुखोद्भूतदिव्यध्वनये अनर्घ्यपदप्राप्तये
अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

शाश्वत जिनशासन सदा, भविजन को सुखकार।
वही वीर-शासन अहो, वर्ते भरत मँझार॥1॥

(वीरछन्द)

केवलज्ञान हुआ प्रभुजी को किन्तु दिव्यध्वनि नहीं खिरी।
अति आश्चर्य हुआ जग-जन को कैसी है यह अनहोनी॥
अनुपम समवसरण की रचना बारह सभा विराज रही।
प्रभु की अंतर्मुख मुद्रा को आशा भरी निहार रही॥2॥
एक-एक दिन करके पूरे छ्यासठ दिन भी बीत गए।
हुआ इंद्र को भी अति अचरज अब तक प्रभु क्यों मौन रहे॥
झलका अवधिज्ञान में तत्क्षण योग्य शिष्य हो सकता कौन?
उँकार ध्वनि झेल सके जो द्वादशांग रच सकता कौन?॥3॥
शिष्य पाँच सौ के गुरु गौतम मिथ्या-मत में पड़े हुए।
किंतु इंद्र इस गौतम में ही महा-योग्यता देख रहे॥
तत्क्षण वेश बना ब्राह्मण का आ गौतम से प्रश्न किया।
काल तीन छह द्रव्य लेश्या की उलझन में मन मेरा॥4॥
काललब्धि आई गौतम की प्रभु की ओर किया प्रस्थान।
मानस्तम्भ लखा जिनवर का गला तुरत मिथ्या अभिमान॥
नमन किया प्रभु को तत्क्षण ही जाग उठा कोई संस्कार।
सर्वारम्भ परिग्रह तज ली दीक्षा वेश-दिगंबर धार॥5॥
धन्य बनी सावन बदि एकम खिरी प्रभु की दिव्यध्वनि।
स्वानुभूतिमय शिवपथ पाकर सारी जगती धन्य बनी॥
अनेकान्तमय वस्तुव्यवस्था जिनशासन में कही गयी।
स्याद्वाद शैली से संशय-विभ्रम-मोह-निशा विघटी॥6॥

(36) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

(दोहा)

यह अलंध्य शासन अहो, सदा रहे जयवंत।
प्रजा छैनी से प्रभो! पाऊँ भव का अंत॥7॥
ॐ ह्रीं श्री शासननायक-तीर्थकरवर्धमान-मुखोद्भूतदिव्यध्वनये अनर्घपदप्राप्तये
जयमालापूर्णाद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

जिनध्वनि सुनकर हे प्रभो, प्रकटे दर्शन-ज्ञान।
अर्पित हैं श्रद्धा-सुमन, पाऊँ आनंद धाम॥8॥
(इति पुष्पांजलि क्षिपामि/क्षिपेत्)

धन्य-धन्य जिनवाणी माता, शरण तुम्हारी आये।
परमागम का मन्थन करके, शिवपुर पथ पर धाये॥
माता दर्शन तेरा रे! भविक को आनन्द देता है।
हमारी नैया खेता है॥1॥
वस्तु कथंचित् नित्य-अनित्य, अनेकांतमय शोभे।
परद्रव्यों से भिन्न सर्वथा, स्वचतुष्टयमय शोभे॥
ऐसी वस्तु समझने से, चतुर्गति फेरा कटा है।
जगत का फेरा मिटता है॥2॥
नय निश्चय-व्यवहार निरूपण, मोक्षमार्ग का करती।
वीतरागता ही मुक्तिपथ, शुभ व्यवहार उचरती॥
माता! तेरी सेवा से, मुक्ति का मारग खुलता है।
महा मिथ्यातम धुलता है॥3॥
तेरे अंचल में चेतन की, दिव्य चेतना पाते।
तेरी अमृत लोरी क्या है, अनुभव की बरसातें॥
माता! तेरी वर्षा में, निजानन्द झरना झरता है।
अनुपमानन्द उछलता है॥4॥
नव-तत्त्वों में छुपी हुई जो, ज्योति उसे बतलाती।
चिदानन्द ध्रुव ज्ञायक घन का, दर्शन सदा कराती॥
माता! तेरे दर्शन से, निजातम दर्शन होता है।
सम्यग्दर्शन होता है॥5॥

॥ श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्य पूजन ॥

स्थापना

(हरिगीतिका)

वीर प्रभु ने दिव्यध्वनि में मार्ग शिवपथ का कहा।
कलिकाल में निर्गन्थ-पथ के जो हुए रक्षक महा।।
सर्वज्ञता की सिद्धि से इस काल के सर्वज्ञ जो।।
मन-वचन-तन से वन्दना है कुन्दकुन्दाचार्य को॥1॥

साक्षात् जिनवर दर्श का सौभाग्य पाया आपने।
दिव्यध्वनि के श्रवण का आनन्द पाया आपने।।
आकर भरत में रच दिए गुरु ग्रन्थ परमागम अहो।
भाग्य जागे भविजनों के पा रहे शिव-पन्थ जो॥2॥

तीर्थकरों का विरह भी बिसरा दिया गुरु आपने।
एकत्वमय शुद्धात्म का दर्शन कराया आपने।।
आचार्यवर विचरण करो मम ज्ञान अरु श्रद्धान मै।
अब खिल उठे गुरु पद-कमल मम हृदय के उद्यान मै॥3॥

(दोहा)

गुरु वचनों में बह रही चिदानन्द रस धार।
पूजूँ भक्तिभाव से स्वानुभूति सुखकार॥4॥

ॐ ह्रीं श्री कलिकालसर्वज्ञ-कुन्दकुन्दाचार्यगुरुवर! अत्र अवतर
अवतर संवौषट्।

ॐ ह्रीं श्री कलिकालसर्वज्ञ-कुन्दकुन्दाचार्यगुरुवर! अत्र तिष्ठ तिष्ठ
ठः ठः ।

ॐ ह्रीं श्री कलिकालसर्वज्ञ-कुन्दकुन्दाचार्यगुरुवर! अत्र मम सन्निहितो
भव भव वषट्।

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

(38) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

(जोगीरासा)

गुरु-परिणति सम निर्मल जल से श्रीगुरु-चरण पखारूँ।
परमागम के ज्ञान-नीर से जन्म-जरा निवारूँ॥
कुन्दकुन्द आचार्यदेव के चरण चित्त में धारूँ।
निर्ग्रन्थों के पथ पर चल निर्ग्रन्थ स्वरूप निहारूँ॥

ॐ ह्रीं श्री कलिकालसर्वज्ञ-कुन्दकुन्दाचार्यगुरुवरेभ्यो जन्म-जरा-
मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

रत्नत्रय से सुरभित गुरु-पद-पंकज उर में धारूँ।
परमागम की ज्ञान-गन्ध से भव आताप निवारूँ॥
कुन्दकुन्द आचार्यदेव के चरण चित्त में धारूँ।
निर्ग्रन्थों के पथ पर चल निर्ग्रन्थ स्वरूप निहारूँ॥

ॐ ह्रीं श्री कलिकालसर्वज्ञ-कुन्दकुन्दाचार्यगुरुवरेभ्यः संसारताप-
विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

गुरुवर के अक्षत वैभव पर उज्ज्वल अक्षत वारूँ।
परमागम के अवगाहन से अक्षत आत्म निहारूँ॥
कुन्दकुन्द आचार्यदेव के चरण चित्त में धारूँ।
निर्ग्रन्थों के पथ पर चल निर्ग्रन्थ स्वरूप निहारूँ॥

ॐ ह्रीं श्री कलिकालसर्वज्ञ-कुन्दकुन्दाचार्यगुरुवरेभ्यः अक्षयपद-
प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

ब्रह्मचर्य ब्रतधारी गुरु को भक्ति-सुमन से पूजूँ।
परमागम के ज्ञान-शील से काम-कलंक निवारूँ॥
कुन्दकुन्द आचार्यदेव के चरण चित्त में धारूँ।
निर्ग्रन्थों के पथ पर चल निर्ग्रन्थ स्वरूप निहारूँ॥

ॐ ह्रीं श्री कलिकालसर्वज्ञ-कुन्दकुन्दाचार्यगुरुवरेभ्यः कामबाण-
विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

रत्नत्रय-साधक भोजन गुरु पाणि-पात्र¹ में अरपूँ।
परमागम का ज्ञान सुधारस पीकर क्षुधा निवारूँ॥।
कुन्दकुन्द आचार्यदेव के चरण चित्त में धारूँ।
निर्ग्रन्थों के पथ पर चल निर्ग्रन्थ स्वरूप निहारूँ॥।

ॐ ह्रीं श्री कलिकालसर्वज्ञ-कुन्दकुन्दाचार्यगुरुवरेभ्यः क्षुधारोग-
विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

केवल-तट² वासी गुरु को श्रुतज्ञान-दीप से पूजूँ।
परमागम की ज्ञान-ज्योति से ज्ञायकभाव प्रकाशूँ॥।
कुन्दकुन्द आचार्यदेव के चरण चित्त में धारूँ।
निर्ग्रन्थों के पथ पर चल निर्ग्रन्थ स्वरूप निहारूँ॥।

ॐ ह्रीं श्री कलिकालसर्वज्ञ-कुन्दकुन्दाचार्यगुरुवरेभ्यो मोहान्धकार-
विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

दश धर्मों की धूप सुरभि से सुरभित गुरु चित धारूँ।
परमागम की ज्ञान धूप से कर्म-कलंक निवारूँ॥।
कुन्दकुन्द आचार्यदेव के चरण चित्त में धारूँ।
निर्ग्रन्थों के पथ पर चल निर्ग्रन्थ स्वरूप निहारूँ॥।

ॐ ह्रीं श्री कलिकालसर्वज्ञ-कुन्दकुन्दाचार्यगुरुवरेभ्यो अष्टकर्म-
विनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

शिवफल साधक गुरु-चरणों में भक्ति-भाव फल वारूँ।
परमागम के ज्ञान-वृक्ष पर स्वानुभूति फल पाऊँ॥।
कुन्दकुन्द आचार्यदेव के चरण चित्त में धारूँ।
निर्ग्रन्थों के पथ पर चल निर्ग्रन्थ स्वरूप निहारूँ॥।

ॐ ह्रीं श्री कलिकालसर्वज्ञ-कुन्दकुन्दाचार्यगुरुवरेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये
फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

1. हाथरूपी पात्र 2. केवलज्ञानरूपी किनारा

(40) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

रत्नत्रय वैभवशाली गुरु भक्ति-अर्द्ध से पूजूँ।
परमागम का ज्ञान-अर्द्ध दे पद-अनर्द्ध प्रकटाऊँ॥
कुन्दकुन्द आचार्यदेव के चरण चित्त में धारूँ।
निर्गन्थों के पथ पर चल निर्गन्थ स्वरूप निहारूँ॥

ॐ हीं श्री कलिकालसर्वज्ञ-कुन्दकुन्दाचार्यगुरुवरेभ्यो अनर्द्धपदप्राप्तये
अर्द्ध निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

(दोहा)

विक्रम सम्बत् एक में जन्मे मुनिवर कुन्द।
वय एकादश में अहो हुए गुरु निर्गन्थ॥1॥

(मरहठा माधवी)

धन्य धन्य गुरु सन्त शिरोमणि कुन्दकुन्द आचार्य हैं।
वीर जिनेश्वर गुरु गौतम के सच्चे वारिसदार¹ हैं॥
सीमन्धर सन्देशा लाये परमागम के पात्र में।
रत्नत्रय से भूषित गुरुवर रत्नत्रय दातार हैं॥2॥

नव तत्त्वों में व्याप्त चिदात्म-ज्योति समय के सार में।
जिसे प्राप्त कर भव्य नहाते चिदानन्द रसधार में॥
चित्-प्रकाश कैवल्य निरखते भेदज्ञान के नैन में।
रत्नत्रय से भूषित गुरुवर रत्नत्रय दातार हैं॥3॥

दिव्यध्वनि का सार भरा है प्रवचनसार महान में।
क्षायिकज्ञान अर्तींद्रिय सुख भी झलक रहा श्रुतज्ञान में॥
व्यय उत्पाद ध्रौव्यमय वस्तु-स्वरूप प्रकाशनहार हैं।
रत्नत्रय से भूषित गुरुवर रत्नत्रय दातार हैं॥4॥

1. उत्तराधिकारी

सप्त तत्त्व पंचास्तिकाय का वर्णन करके ग्रन्थ में।
 दर्श-ज्ञान-चारित्र नियम से बतलाया शिवपन्थ में॥
 त्रैकालिक ध्रुवतत्त्व निहारो कहे नियम का सार है।
 रत्नत्रय से भूषित गुरुवर रत्नत्रय दातार हैं॥५॥
 शिथिलाचार दिखा गुरुवर को निर्ग्रन्थों के पन्थ में।
 तो मुनिमार्ग स्वरूप दिखाया अष्टपाहुड़ सुग्रन्थ में॥
 सर्वारम्भ-परिग्रह विरहित मार्ग दिखावनहार हैं।
 रत्नत्रय से भूषित गुरुवर रत्नत्रय दातार हैं॥६॥

(दोहा)

सन्मति नन्दन हैं अहो कुन्दकुन्द आचार्य।
 चरणों में अर्पित करूँ भक्तिभावमय अर्घ्य॥७॥

ॐ हीं श्री कलिकालसर्वज्ञ-कुन्दकुन्दाचार्यगुरुवरेभ्यो अनर्घ्यपद-प्राप्तये
 जयमालापूर्णाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

* * * *

... तत्त्वज्ञान विलासी हो ...

धन-धन जैनी साधु जगत के, तत्त्वज्ञान विलासी हो ॥टेक ॥
 दर्शन बोधमई निज मूरति जिनको अपनी भासी हो ।
 त्यागी अन्य समस्त वस्तु में अहंबुद्धि दुखदासी हो ॥१॥
 जिन अशुभोपयोग की परिणति सत्तासहित विनाशी हो ।
 होय कदाच शुभोपयोग तो तहँ भी रहत उदासी हो ॥२॥
 छेदत जे अनादि दुखदायक दुविधि बंध की फाँसी हो ।
 मोह क्षोभ रहित जिन परिणति विमल मयंक विलासी हो ॥३॥
 विषय चाह दव दाह बुझावन साम्य सुधारस रासी हो ।
 'भागचन्द' पद ज्ञानानन्दी साधक सदा हुलासी हो ॥४॥

(42) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

॥ श्रीमद् आचार्य अमृतचन्द्रदेव पूजन ॥

स्थापना

(हरिगीतिका)

श्री वर्धमान जिनेन्द्र, गुरु-गौतम युगल-पद उर धरूँ।
पंच-परमागम प्रदाता कुन्द-वचनामृत पियूँ॥
ग्रन्थ त्रय के मर्म-उद्घाटक रची टीका अहो।
आचार्य अमृतचन्द्र के पद-कमल की पूजा करूँ॥

साहित्य भाषा छन्द एवं काव्य रस का पान कर।
सिद्धान्त अरु अध्यात्म भक्ति-त्रिवेणी में स्नान कर॥
न्याय शैली नींव पर अध्यात्म मन्दिर में यजूँ।
स्वानुभूति सुवर्ण शोभित कलश सुन्दर नित लखूँ॥

(दोहा)

अनेकान्त ध्वज में दिपे¹ स्याद्वाद का रंग।
लहराया कलिकाल में गुरुवर ने सर्वांग॥
मम परिणति में नित बसें अमृतचन्द्राचार्य।
भाव सहित पूजा करूँ लय हों विषय-विकार॥

ॐ ह्रीं षट्त्रिंशत्तुगुणविभूषित-आचार्य अमृतचन्द्रगुरुवर! अत्र अवतर
अवतर संवौषट् इत्याह्वानम्।

ॐ ह्रीं षट्त्रिंशत्तुगुणविभूषित-आचार्य अमृतचन्द्रगुरुवर! अत्र तिष्ठ²
तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।

ॐ ह्रीं षट्त्रिंशत्तुगुणविभूषित-आचार्य अमृतचन्द्रगुरुवर! अत्र मम
सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

1. चमके

अष्टक

(मरहठा माधवी)

शुद्ध परिणति निर्मल झरना झरता चेतन-चन्द्र में।

भक्ति-नीर मैं करूँ समर्पित परिणति हुई विनम्र है॥

आत्मख्याति अरु तत्त्वदीपिका दाता अमृतचन्द्र हैं।

समय-व्याख्या से शोभित गुरु त्रिभुवन में अभिवन्द्य हैं॥

ॐ हीं षट्त्रिंशत्तुगुणविभूषित-आचार्य अमृतचन्द्रगुरुवरेभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन-सम शीतलता व्यापी अन्तर्मुख परिणाम में।

भव-आताप विनाशूँ गुरु मैं विचरूँ शाश्वत धाम में॥

आत्मख्याति अरु तत्त्वदीपिका दाता अमृतचन्द्र हैं।

समय-व्याख्या से शोभित गुरु त्रिभुवन में अभिवन्द्य हैं॥

ॐ हीं षट्त्रिंशत्तुगुणविभूषित-आचार्य अमृतचन्द्रगुरुवरेभ्यः संसारताप-विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

परिणति हुई अखण्डित गुरु की अक्षत ज्ञायक भाव में।

हे गुरु! मम श्रद्धान अखण्डित वर्ते ज्ञान स्वभाव में॥

आत्मख्याति अरु तत्त्वदीपिका दाता अमृतचन्द्र हैं।

समय-व्याख्या से शोभित गुरु त्रिभुवन में अभिवन्द्य हैं॥

ॐ हीं षट्त्रिंशत्तुगुणविभूषित-आचार्य अमृतचन्द्रगुरुवरेभ्यो अक्षयपद-प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नत्रय सौरभ से सुरभित सदा आपका द्रव्य है।

हे गुरु! शब्द-सुमन विकसाओ, कहो ‘वत्स तू भव्य है’॥

आत्मख्याति अरु तत्त्वदीपिका दाता अमृतचन्द्र हैं।

समय-व्याख्या से शोभित गुरु त्रिभुवन में अभिवन्द्य हैं॥

ॐ हीं षट्त्रिंशत्तुगुणविभूषित-आचार्य अमृतचन्द्रगुरुवरेभ्यः कामबाण-विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

(44) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

ज्ञानानन्द सुधारस पीकर तृप्त रहें निज भाव में।

अब किंचित् रसपान करूँ गुरु! भव का करूँ अभाव मैं॥

आत्मख्याति अरु तत्त्वदीपिका दाता अमृतचन्द्र हैं।

समय-व्याख्या से शोभित गुरु त्रिभुवन में अभिवन्द्य हैं॥

ॐ ह्रीं षट्त्रिंशत्पुणविभूषित-आचार्य अमृतचन्द्रगुरुवरेभ्यः क्षुधारोग-
विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वानुभूति में करें प्रकाशित गुरुवर ज्ञायक भाव को।

कब निरखूँ मैं स्वसम्वेदी-श्रुत में ज्ञान स्वभाव को॥

आत्मख्याति अरु तत्त्वदीपिका दाता अमृतचन्द्र हैं।

समय-व्याख्या से शोभित गुरु त्रिभुवन में अभिवन्द्य हैं॥

ॐ ह्रीं षट्त्रिंशत्पुणविभूषित-आचार्य अमृतचन्द्रगुरुवरेभ्यो मोहान्धकार-
विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्मल ज्ञान-पवन से गुरु का पर्यावरण विशुद्ध है।

गुरु-वाणी से निज को निरखूँ शुद्ध बुद्ध अविशुद्ध मैं॥

आत्मख्याति अरु तत्त्वदीपिका दाता अमृतचन्द्र हैं।

समय-व्याख्या से शोभित गुरु त्रिभुवन में अभिवन्द्य हैं॥

ॐ ह्रीं षट्त्रिंशत्पुणविभूषित-आचार्य अमृतचन्द्रगुरुवरेभ्यो अष्टकर्म-
दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

तव चारित्र-विटप पर शिवफल फले शीघ्र यह कामना।

भक्ति-भाव फल अर्पित गुरुवर प्रकटे निज आराधना॥

आत्मख्याति अरु तत्त्वदीपिका दाता अमृतचन्द्र हैं।

समय-व्याख्या से शोभित गुरु त्रिभुवन में अभिवन्द्य हैं॥

ॐ ह्रीं षट्त्रिंशत्पुणविभूषित-आचार्य अमृतचन्द्रगुरुवरेभ्यो मोक्षफल-
प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्मल परिणति में नित करते पद-अनध्य आराधना।
 भक्ति अर्ध्य अर्पित हे गुरुवर! करूँ सदा शिव-साधना॥।
 आत्मख्याति अरु तत्त्वदीपिका दाता अमृतचन्द्र हैं।
 समय-व्याख्या से शोभित गुरु त्रिभुवन में अभिवन्द्य हैं॥।
 ॐ हीं षट्ट्रिंशत् गुणविभूषित-आचार्य अमृतचन्द्रगुरुवरेभ्यो अनध्यपद-
 प्राप्तये अर्ध्य निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

कुन्दकुन्द उर बैठकर टीका रची महान।
 सुधा-सूरि गुरु का करूँ कैसे मैं गुणगान॥।

(हरिगीतिका)

आचार्य अमृतचन्द्र की महिमा जगत विख्यात है।
 कर रही रचना मुमुक्षु को चिदात्म ख्याति है॥।
 भेद-गर्भित सर्व जिसमें पारिणामिक भाव की-
 दृष्टि करें आत्मार्थि-जन अनुभूति हो आनन्द की॥1॥।
 समय प्रवचनसार पंचास्ति रचे मुनि कुन्द ने।
 इन ग्रन्थ त्रय का हार्द बतलाया जगत को आपने॥।
 आत्मख्याति के कलश से स्वानुभव रस छलकता।
 गम्भीर रचना गद्य में शुद्धात्म सागर उछलता॥2॥।
 प्यासे परम आनन्द के जो भव्यजन उनके लिए।
 प्रकटी सुतत्त्व-प्रदीपिका जिन-दिव्यध्वनि के सार में॥।
 षट् द्रव्य और पदार्थ नव का, मुक्ति के सन्मार्ग का।
 गुरु मर्म खोला आपने करके समय सु-विवेचना॥3॥।

(46) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

पुरुषार्थ-सिद्धि-उपाय में श्रावक धरम वर्णन किया।
रागादि की उत्पत्ति को हिंसादि मूलक कह दिया॥
गुरु उमास्वामी रचित जो तत्त्वार्थसूत्र प्रसिद्ध है।
तत्त्वार्थसार सुकाव्य रचना करे शिवपथ सिद्ध है॥4॥
लघु-तत्त्व का स्फोट करके किया अति उपकार है।
जिनभक्ति रस में दिव्यध्वनि का कह दिया सब सार है॥
उभयधर्मी वस्तु का वर्णन किया स्याद्वाद से।
आत्मार्थ जन सब धन्य होते स्वानुभव रस स्वाद से॥5॥
ॐ हीं षट्त्रिंशत् गुणविभूषित-आचार्य अमृतचन्द्रगुरुवरेभ्यो अनर्थपद-
प्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

पठन-मनन-चिन्तन करूँ निर्ग्रन्थों के ग्रन्थ।
स्वानुभूति में प्रकट हो पूजा-फल शिव-पन्थ॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

परम गुरु बरसत ज्ञान झरी ।

हरषि-हरषि बहु गरजि-गरजि के मिथ्या तपन हरी ॥टेक॥

सरथा भूमि सुहावनि लागी संयम* बेल हरी ।

भविजन मन सरवर भरि उमड़े समुद्धि पवन सियरी ॥1॥

स्याद्वाद नय बिजली चमके परमत शिखर परी ।

चातक मोर साधु श्रावक के हृदय सु भक्ति भरी ॥2॥

जप तप परमानन्द बढ्यो है, सुखमय नींव धरी ।

‘द्यानत’ पावन पावस आयो, थिरता शुद्ध करी ॥3॥

* वर्षा ऋतु के सांगरूपक अलंकार की दृष्टि से ‘संयम’ शब्द ही होना चाहिए, ‘संशय’ नहीं। सम्यग्दर्शन की भूमि पर संयम की बेलें हरी-भरी होकर फूलती-फलती हैं।

॥ श्रीमद् जयसेनाचार्यदेव पूजन ॥

स्थापना

(हरिगीत)

वीर प्रभु, गौतम सुगुरु के पद-कमल उर में धरूँ।
पंच परमागम प्रदाता पदमनन्दि-पद नमूँ॥
ग्रन्थ त्रय टीका रची आचार्य अमृतचन्द्र ने।
तात्पर्यवृत्ति सरल टीका रची गुरु जयसेन ने॥1॥

जयसेन गुरुवर की सरल शैली भविक-मन मोहती।
पद-खण्डना कर ग्रन्थकर्ता के हृदय को खोलती॥
नय-विवक्षा भी बताते संशयादि विलीन हों।
अंत में भावार्थ लिखते भव्य! अब निज हित करो॥2॥

गुरुवर कथित तात्पर्यवृत्ति बसे मम श्रद्धान में।
शुद्धात्म की अनुभूति विलसे स्व-संवेदन ज्ञान में॥
आप-सम निर्ग्रथता की सदा वर्ते भावना।
निजानंद तरंग उछलें रहे नहिं कुछ कामना॥3॥

(दोहा)

गुरु जयसेनाचार्य के चरणों का धरि ध्यान।

भाव सहित पूजन करूँ प्रकटें दर्शन-ज्ञान॥

श्रद्धा-ज्ञान-चरित्र में आओ कृपा निधान।

आहवानन सुस्थापना सन्निधिकरण विधान॥

ॐ हीं श्री जयसेनाचार्यगुरुवर! अत्र अवतर अवतर संवैषट्।

ॐ हीं श्री जयसेनाचार्यगुरुवर! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।

ॐ हीं श्री जयसेनाचार्यगुरुवर! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

(48) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

(मरहठा माधवी)

सम्यक् मति श्रुतज्ञान नीर से मिथ्या-मल प्रक्षाल हो।

अजर अमर शुद्धात्म-स्वाद से जन्म-जरा-मृतु नाश हो॥

शुद्धात्मानुभूति लक्षण तात्पर्य-वृत्ति दातार हैं।

गुरु जयसेन चरण-कमलों में वन्दन शत शत बार है॥

ॐ ह्रीं श्री जयसेनाचार्यगुरुवरेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं
निर्वपामीति स्वाहा ।

परम समरसी भाव व्याप्त है चिन्मय ज्ञान तरंग में।

गुरु-वचनों में भव-आताप विनाशक चंदन गंध है॥

शुद्धात्मानुभूति लक्षण तात्पर्य-वृत्ति दातार हैं।

गुरु जयसेन चरण-कमलों में वन्दन शत शत बार है॥

ॐ ह्रीं श्री जयसेनाचार्यगुरुवरेभ्यः संसारताप-विनाशनाय चन्दनं
निर्वपामीति स्वाहा ।

अक्षत सुख-रस स्वाद निराकुल धारा बहे अखंड है।

क्षत-विक्षत सुख-ज्ञान पराश्रित दिखे न चेतनचन्द्र में॥

शुद्धात्मानुभूति लक्षण तात्पर्य-वृत्ति दातार हैं।

गुरु जयसेन चरण-कमलों में वन्दन शत शत बार है॥

ॐ ह्रीं श्री जयसेनाचार्यगुरुवरेभ्यो अक्षयपद-प्राप्तये अक्षतान्
निर्वपामीति स्वाहा ।

निर्विकल्प शुद्धात्म-भावना की सुगंध निष्काम है।

काम-कलंक विनाशक गुण-सुमनों से शोभित धाम है॥

शुद्धात्मानुभूति लक्षण तात्पर्य-वृत्ति दातार हैं।

गुरु जयसेन चरण-कमलों में वन्दन शत शत बार है॥

ॐ ह्रीं श्री जयसेनाचार्यगुरुवरेभ्यः कामबाण-विनाशनाय पुष्पं
निर्वपामीति स्वाहा ।

निज शुद्धात्म-समाधि सुखामृत रस में गुरुवर तृप्त हैं।

क्षुधा-वेदना उदित न होती चिदानन्द में मस्त हैं॥

शुद्धात्मानुभूति लक्षण तात्पर्य-वृत्ति दातार हैं।

गुरु जयसेन चरण-कमलों में वन्दन शत शत बार है॥

ॐ ह्रीं श्री जयसेनाचार्यगुरुवरेभ्यः क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं
निर्वपामीति स्वाहा ।

सम्यग्ज्ञान ज्योति में झलके अनेकांतमय तत्त्व है।

संशय-विभ्रम-मोह रहित अनुभूति सदा निष्पक्ष है॥

शुद्धात्मानुभूति लक्षण तात्पर्य-वृत्ति दातार हैं।

गुरु जयसेन चरण-कमलों में वन्दन शत शत बार है॥

ॐ ह्रीं श्री जयसेनाचार्यगुरुवरेभ्यो मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं
निर्वपामीति स्वाहा ।

द्रव्यकर्म से भिन्न राग को कहते चेतनरूप हैं।

किन्तु चिदात्म ध्यान-अनल में जले कर्म की धूप है॥

शुद्धात्मानुभूति लक्षण तात्पर्य-वृत्ति दातार हैं।

गुरु जयसेन चरण-कमलों में वन्दन शत शत बार है॥

ॐ ह्रीं श्री जयसेनाचार्यगुरुवरेभ्यो अष्टकर्मविनाशनाय धूपं निर्वपामीति
स्वाहा ।

शुक्लध्यान के फल में गुरुवर केवलज्ञान विलोकते।

किन्तु ध्यान भी विनाशीक लख शाश्वत ध्रुव-फल भोगते॥

शुद्धात्मानुभूति लक्षण तात्पर्य-वृत्ति दातार हैं।

गुरु जयसेन चरण-कमलों में वन्दन शत शत बार है॥

ॐ ह्रीं श्री जयसेनाचार्यगुरुवरेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति
स्वाहा ।

टीका के भावार्थों का अर्पित गुरुवर! यह अर्द्ध है।

भाववान शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति अन् अर्द्ध है॥

(50) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

शुद्धात्मानुभूति लक्षण तात्पर्य-वृत्ति दातार हैं।

गुरु जयसेन चरण-कमलों में वन्दन शत शत बार है॥

ॐ हीं श्री जयसेनाचार्यगुरुवरेभ्यो अनधर्यपदप्राप्तये अर्ध्यं निर्वपामीति
स्वाहा ।

जयमाला

(दोहा)

टीकाओं में लिख दिए कई रहस्य अनमोल।

जयमाला में कह रहा उनमें से कुछ बोल॥1॥

(वीरछन्द)

जिन जिनवर अरु जिनवर-वृषभों का वर्णन गुरु करते हैं।¹

सासादन से क्षीणमोह तक एकदेश जिन कहते हैं॥

केवलि प्रभु जिनवर अरु जिनवर वृषभ कहें तीर्थकर को।

सिद्धों को, तीर्थकर को अरु नमन करें सब श्रमणों को॥2॥

चार भाव पर्यायरूप अरु द्रव्यरूप है पंचम भाव।²

द्रव्य और पर्यायमयी सापेक्ष सदा है आत्मपदार्थ॥

शुद्ध जीवत्व शक्ति लक्षण है पंचम भाव निरावरणी।

शुद्ध पारिणामिक स्वभाव है बन्ध-मोक्ष पर्याय विहीन॥3॥

काललब्धिवश भव्यशक्ति की व्यक्ति जब कभी होती है।

श्रद्धा-ज्ञान-चरित्ररूप परमात्म-परिणति होती है॥

उपशम और क्षयोपशम क्षायिक समकित आगम कहता है।

अरु अध्यात्म कथन में यह शुद्धोपयोग कहलाता है॥4॥

शुद्धात्म द्रव्य से भिन्न कथंचित् उपशमादि ये पर्यायें।

शुद्ध पारिणामिक अविनाशी विनाशीक ये पर्यायें॥

1. छंद 2 प्रबचनसार गाथा-201 की टीका के आधार से।

2. छंद 3 से 7 तक समयसार गाथा 320 की टीका के आधार से।

उपशम और क्षयोपशम क्षायिक राग रहित ये तीनों भाव।
 यही मुक्ति के कारण होते, नहीं पारिणामिक शुध भाव॥5॥
 शक्तिरूप मुक्ति अनादि से शुद्ध पारिणामिक में है।
 बन्ध-मोक्ष अरु उनके कारण से विरहित निष्क्रिय ध्रुव है॥
 शुद्ध पारिणामिक स्वभाव तो ध्येयरूप, नहिं ध्यान स्वरूप।
 मैं कर्ता नहिं बंध-मुक्ति का जन्म-मरण विरहित चिद्रूप॥6॥
 शुद्ध नयाश्रित एकदेश भावना क्षयोपशम ज्ञानस्वरूप।
 किंतु ध्यान करनेवाले ध्याते निज को अखंड ध्रुवरूप॥
 सकल आवरण रहित एक प्रत्यक्षरूप प्रतिभासस्वरूप।
 शुद्ध पारिणामिक लक्षण मैं अविनाशी परमात्मस्वरूप॥7॥
 ॐ ह्रीं श्री जयसेनाचार्यदेवाय अनर्थपदप्राप्तये जयमाला-पूर्णार्थ्य
 निर्वपामीति स्वाहा ।

(दोहा)

इसप्रकार शिवमार्ग का करें कथन आचार्य।
 अर्पित हैं श्रद्धा-सुमन ध्यावें पद-परमार्थ॥7॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

वे मुनिवर कब मिलिहें उपगारी ।
 साधु दिग्म्बर, नग्न निरम्बर, संवर भूषण धारी ॥टेक ॥
 कंचन-काँच बराबर जिनके, ज्यों रिपु त्यों हितकारी ।
 महल मसान, मरण अरु जीवन, सम गरिमा अरु गारी ॥1 ॥
 सम्यग्ज्ञान प्रधान पवन बल, तप पावक परजारी ।
 शोधत जीव सुवर्ण सदा जे, काय-कारिमा टारी ॥2 ॥
 जोरि युगल कर 'भूधर' विनवे, तिन पद ढोक हमारी ।
 भाग उदय दर्शन जब पाऊँ, ता दिन की बलिहारी ॥3 ॥

(52) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

श्री समयसार परमागम विधान

(यह विधान करने से पूर्व समय की अनुकूलता के अनुसार आचार्य कुन्दकुन्द पूजन, आचार्य अमृतचन्द्र पूजन एवं आचार्य जयसेन पूजन का आनंद अवश्य लेवें।)

मंगलाचरण

(हरिगीतिका)

वीतरागी वीर प्रभु के चरण में वन्दन करूँ।
नाथ सीमन्धर जिनेश्वर की सुछवि उर में धरूँ॥
गौतम गुरु उपकार को वन्दन करूँ सुमरन करूँ॥
कुन्दकुन्दाचार्य के उपकार को वन्दन करूँ॥1॥
तीर्थ-कर्ता वीर की वाणी समय के सार में।
नाथ सीमन्धर-ध्वनि गूँजे समय के सार में॥
भाव-श्रुत गौतम-गुरु का है समय के सार में।
स्वानुभव वैभव भरा है कुन्दकुन्दाचार्य ने॥2॥
पर से पृथक् एकत्व का दर्शन समय के सार में।
जो अप्रमत्त प्रमत्त नहिं ज्ञायक, समय के सार में॥
चिन्मात्र ज्योति स्वरूप दिखलाया समय के सार में।
नव तत्त्व भी हैं स्वांग, गाया कुन्दकुन्दाचार्य ने॥3॥
आत्मख्याति प्रदान-कर्ता संत अमृतचन्द्र को।
तात्पर्यवृत्ति रची अहो! आचार्य श्री जयसेन को॥
ग्रन्थ के मर्मोद्घाटक ज्ञानियों के हृदय में -
जिनके चरण नित बसें, उन निर्ग्रन्थ गुरु को नमन हो॥4॥

(दोहा)

मंगलमय इस ग्रन्थ का, यह विधान सुखकार।
भक्ति सहित संक्षेप में, लिखूँ ग्रन्थ का सार॥5॥
(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

श्री समयसार परमागम पूजन

स्थापना

(दोहा)

कुन्दकुन्द मुनि ने रचा, समयसार यह ग्रन्थ।
स्वानुभूति रस से भरा, निर्गन्थों का पन्थ॥

स्व-संवेदन ज्ञान में, आय बसो जिनराज।
स्थापन-सन्निधिकरण, सिद्ध करे मम काज॥

ॐ ह्रीं श्री एकत्व-विभक्त-स्वरूप-प्रकाशक-समयसारपरमागम! अत्र
अवतर अवतर संवैषट्। (इति आह्वानम्।)

ॐ ह्रीं श्री एकत्व-विभक्त-स्वरूप-प्रकाशक-समयसारपरमागम! अत्र
तिष्ठ ठः ठः। (इति स्थापनम्।)

ॐ ह्रीं श्री एकत्व-विभक्त-स्वरूप-प्रकाशक-समयसारपरमागम! अत्र
मम सन्निहितो भव भव वषट्। (इति सन्निधिकरणम्।)

(जोगीरासा : तर्ज - आत्म को हित है सुख सो सुख...)

तन-चेतन के भेदज्ञान का सम्यक् नीर भराऊँ।

प्रभो! भक्ति के भाजन में भर जन्म-मरण विनशाऊँ॥

नव तत्त्वों में छिपी हुई चैतन्य-ज्योति दिखलाता।

कुन्दकुन्द आचार्य कथित यह समयसार सुखदाता॥

ॐ ह्रीं श्री एकत्व-विभक्त-स्वरूप-प्रकाशक-समयसारपरमागमाय
जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्तृ-कर्म की मिथ्या श्रद्धा भवाताप दुखदाई॥

परम अकर्ता ज्ञायक-लक्ष्यी शीतल गन्ध सुहाई॥

नव तत्त्वों में छिपी हुई चैतन्य-ज्योति दिखलाता।

कुन्दकुन्द आचार्य कथित यह समयसार सुखदाता॥

ॐ ह्रीं श्री एकत्व-विभक्त-स्वरूप-प्रकाशक-समयसारपरमागमाय
संसारताप-विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

(54) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

पुण्य-पाप क्षत-विक्षत परिणति का एकत्व नशाऊँ।
प्रभो! अखंडित निज ज्ञायक लख, शाश्वत सुख प्रकटाऊँ॥
नव तत्त्वों में छिपी हुई चैतन्य-ज्योति दिखलाता।
कुन्दकुन्द आचार्य कथित यह समयसार सुखदाता॥

ॐ हीं श्री एकत्व-विभक्त-स्वरूप-प्रकाशक-समयसारपरमागमाय
अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

द्रव्य-भाव आस्त्रव की दुखमय परम्परा विनशाऊँ।
प्रभु! निष्काम-भक्ति-सुमनों से काम-कलंक नशाऊँ।
नव तत्त्वों में छिपी हुई चैतन्य-ज्योति दिखलाता।
कुन्दकुन्द आचार्य कथित यह समयसार सुखदाता॥

ॐ हीं श्री एकत्व-विभक्त-स्वरूप-प्रकाशक-समयसारपरमागमाय
कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभो! स्वच्छ उपयोग निरखकर ज्ञेय-लुब्धता त्यागूँ।
सहज अतीन्द्रिय चिदानन्द रस पीकर क्षुधा विनाशूँ।
नव तत्त्वों में छिपी हुई चैतन्य-ज्योति दिखलाता।
कुन्दकुन्द आचार्य कथित यह समयसार सुखदाता॥

ॐ हीं श्री एकत्व-विभक्त-स्वरूप-प्रकाशक-समयसारपरमागमाय
क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भेदज्ञान की ज्योति निरन्तर चिर-अज्ञान विनाशे।
ज्ञान और वैराग्य शक्ति निज ज्ञायक भाव प्रकाशे॥
नव तत्त्वों में छिपी हुई चैतन्य-ज्योति दिखलाता।
कुन्दकुन्द आचार्य कथित यह समयसार सुखदाता॥

ॐ हीं श्री एकत्व-विभक्त-स्वरूप-प्रकाशक-समयसारपरमागमाय
मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

पर को सुखी-दुखी मैं करता मारूँ और जिलाऊँ -
यह विरुद्ध अभिप्राय तजूँ मैं कर्म-बन्ध विनशाऊँ॥

नव तत्त्वों में छिपी हुई चैतन्य-ज्योति दिखलाता।
 कुन्दकुन्द आचार्य कथित यह समयसार सुखदाता॥
 ॐ हीं श्री एकत्व-विभक्त-स्वरूप-प्रकाशक-समयसारपरमागमाय
 अष्टकमर्दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान-राग में सन्धि निरखकर प्रज्ञाछैनी द्वारा।
 बन्ध छेद कर शिवफल पाऊँ भोगूँ सौख्य अपारा॥
 नव तत्त्वों में छिपी हुई चैतन्य-ज्योति दिखलाता।
 कुन्दकुन्द आचार्य कथित यह समयसार सुखदाता॥
 ॐ हीं श्री एकत्व-विभक्त-स्वरूप-प्रकाशक-समयसारपरमागमाय
 मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

सर्व विशुद्ध अकर्ता ज्ञायक का वैभव प्रकटाऊँ।
 पद अनर्थ्य अविनाशी पाने को यह अर्थ्य चढ़ाऊँ॥
 नव तत्त्वों में छिपी हुई चैतन्य-ज्योति दिखलाता।
 कुन्दकुन्द आचार्य कथित यह समयसार सुखदाता॥
 ॐ हीं श्री एकत्व-विभक्त-स्वरूप-प्रकाशक-समयसारपरमागमाय
 अनर्थ्यपदप्राप्तये अर्थ्य निर्वपामीति स्वाहा।

अर्ध्यावली

(दोहा)

नव तत्त्वों के स्वांग में, छिपा समय का सार।
 वर्णन करते हैं गुरु, लिखते दस अधिकार॥
 श्री गुरु चरण-प्रसाद से, लिखूँ ग्रन्थ का सार।
 कहूँ सभी अधिकार का, अर्ध्यावलि में सार॥
 नव तत्त्वों के सुमन में, महके चेतन गन्ध।
 अर्पित हैं श्रद्धा-सुमन, नमों नमों निर्ग्रन्थ॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

(56) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

1

पूर्वंग समन्वित समयसार के लिए अर्द्ध

(दोहा)

पूर्वंग में भर रहे, कुन्दकुन्द आचार्य।
यह अपूर्व-रंग ही अहो, समयसार का सार॥

(वीरछंद : तर्ज - आशा की प्यास बुझाने को....)

स्वानुभूति से सदा प्रकाशित सत् स्वरूप है जो चेतन।
जग के सब पदार्थ का ज्ञाता समयसार को है वन्दन॥
धर्म अनन्तमयी वस्तु जो रहे सर्वदा पर से भिन्न।
सदा प्रकाशित अनेकान्तमय मूर्ति करे नित अवलोकन॥1॥

जो अप्रमत्त-प्रमत्त नहीं वह ज्ञायक मेरा निश्चय रूप।
दर्श ज्ञान चारित्र भेद से रहित सदा मैं चेतन रूप॥
अभूतार्थ व्यवहार बताया कहा शुद्धनय को भूतार्थ।
सम्यग्दर्शन का है आश्रयभूत मात्र जानो परमार्थ॥2॥

कहे शुद्धनय शुद्धातम को बद्ध-स्पृष्ट-विभाव विहीन।
ज्ञानमात्र सामान्य मुख्य हो तो होवे अनुभूति प्रवीण॥
जैसे जग में धन का अर्थी सेवक हो धनवानों का।
हे मोक्षार्थी! सेवक बनना मात्र एक शुद्धातम का॥3॥

कर्म और नोकर्म द्रव्य को अपना माने अज्ञानी।
इनसे भिन्न चिदात्म लखे जो जीव वही होता ज्ञानी॥
तन-चेतन हैं कथनमात्र ही एक, भिन्न जानूँ परमार्थ।

अर्द्ध समर्पित जिन-चरणों में पद अनर्द्ध पाऊँ सत्यार्थ॥4॥

ॐ ह्रीं श्री पूर्वंगसमन्वित-समयसारपरमागमाय नमः अर्द्धं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

स्वानुभूति सर्वांग, एक शुद्ध चैतन्य की।

भक्ति-सुमन का रंग, पूर्वंग अधिकार में॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

जीवाजीवाधिकार समन्वित समयसार के लिए अर्द्ध

(दोहा)

चेतन लक्षण जीव को, जड़ अजीव को जान।

श्री गुरु-चरण प्रताप से, करें भेद-विज्ञान॥

(हरिगीतिका : तर्ज - सन्तप्त मानस शान्त हों...)

पर को कहे जो आत्मा वे मूढ़ निज नहिं जानते।

कर्म या नोकर्म अथवा राग को निज मानते॥

वर्णादि अरु रागादि अध्यवसान को पुद्गल कहा।

क्योंकि पुद्गल द्रव्य से निष्पन्न - जिनवर ने कहा॥1॥

यदि भाव-अध्यवसान को जिन कदाचित् चेतन कहें।

यह कथन है व्यवहार का ही पक्ष वे प्रस्तुत करें॥

ज्यों नृपति सैन्यसमूह संग जब चले तो जन यह कहें।

ये जा रहे राजा परन्तु नृपति उनमें एक है॥2॥

आत्मा चैतन्यमय रस रूप गंध विहीन है।

अस्पर्श और अव्यक्त जानो अलिंगग्रहण स्वरूप है॥

किन्तु नय-व्यवहार से वर्णादि कहते जीव के।

परमार्थ से ये सभी पुद्गल, हो सकें नहिं जीव के॥3॥

यदि जीव हो वर्णादिमय, तो पृथक् जड़ से नहिं रहे।

हों एक लक्षण जीव जड़ तो सिद्ध भी पुद्गल बने॥

गुणथान को भी मोहकर्म उदयजनित जिनवर कहें।

अर्द्ध अर्पित जिन-चरण में भव्य शिव-सुख को लहें॥4॥

ॐ ह्रीं श्री जीवाजीवाधिकारसमन्वित-समयसारपरमागमाय नमः अर्द्ध नि. स्वाहा।

(सोरठा)

अहो! ग्रन्थ का सार, जड़-चेतन की भिन्नता।

अर्पित है सुखकार, भेदज्ञान श्रद्धा-सुमन॥

(इति पुष्टांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

(58) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

3

कर्ता-कर्माधिकार समन्वित समयसार के लिए अर्द्ध

(दोहा)

पर में कर्ता-कर्म की, वृत्ति नशाऊँ नाथ।

परम अकर्ता भाव का, स्वानुभूति में वास॥

(मरहठा माधवी : तर्ज - आओ बच्चो तुम्हें सुनायें...)

क्रोधादिक में अहंबुद्धि से होय कर्म का बन्ध है।

इनसे भिन्न निजातम जाने तो फिर जीव अबन्ध है॥

अशुचि अचेतन आस्त्रव हैं मैं चेतन निर्मम शुद्ध हूँ॥

ये दुखमय दुखरूप जानकर मैं इनसे निवृत्त हूँ॥11॥

कर्म और नोकर्म दशा को करूँ नहीं बस जानता।

पर की पर्यायों को नहिं उपजूँ ग्रहता अरु परिणमता॥

जीव-कर्म के परिणामों में कर्ता-कर्म अभाव है।

मात्र परस्पर निमित्त और नैमित्तिक का उपचार है॥12॥

मोहमयी निज परिणामों का कर्ता हो अज्ञान से।

शुद्ध निरंजन चिन्मय भावों का कर्ता सद्ज्ञान से॥

किन्तु कदापि न पर का कर्ता ज्ञान तथा अज्ञान से।

त्रिविध रूप उपयोग विकारों का कर्ता अज्ञान से॥13॥

जीव, कर्म से बँधा मुक्त है - ये दोनों नय पक्ष हैं।

दोनों नय को मात्र जानते ज्ञानी तो निष्पक्ष हैं॥

जो नय-पक्षों से अतीत है वही समय का सार है।

अर्द्ध समर्पित जिन-चरणों में होऊँ भव से पार है॥14॥

ॐ ह्रीं श्री कर्ताकर्माधिकारसमन्वित-समयसारपरमागमाय नमः अर्द्धं नि. स्वाहा।

(सोरठा)

नष्ट करूँ दुर्गन्ध, कर्ता-कर्म विभाव की।

भक्ति-सुमन में रंग, परम अकर्ता भाव का॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

पुण्य-पापाधिकार समन्वित समयसार के लिए अर्थ

(दोहा)

जीव तत्त्व से भिन्न हैं, पुण्य-पाप परिणाम।
दोनों कारण बन्ध के, जाने सम्यक् ज्ञान॥

(जोगीरासा)

पुण्य-पाप दोनों बन्धन के कारण जिनवर कहते।
एक स्वर्ण तो एक लौह की बेड़ी ज्ञानी लखते॥
ज्यों कुशील जन की संगति को शीलवान जन तजते।
त्यों ज्ञानी कुत्सित कर्मों को त्याग निजातम भजते॥1॥

ज्यों शूद्रा के युगल पुत्र में इक ब्राह्मण घर पलता।
निज को ब्राह्मण जान दूर से मदिरा सेवन तजता॥
किन्तु दूसरा मदिरा में ही नित्य नहाया करता।
पाप-पुण्य युग कर्मजन्य लख ज्ञानी निज को भजता॥2॥

जो तप शील ब्रतादिक पालें किन्तु पुण्य को चाहें।
दूर रहें परमार्थ पन्थ से भव-कारण अवगाहें॥
जीवादिक की श्रद्धा समकित ज्ञान कहें जिन सम्यक्।
रागादिक परिहार चरित है यही मुक्तिपथ सम्यक्॥3॥

विद्वज्जन भूतार्थ छोड़ व्यवहार मार्ग को चाहें।
किन्तु कर्मक्षय निश्चय आश्रित गुरु निर्ग्रन्थ बतायें॥
रागादिक से रहित आत्मा का आश्रय शिवदाता।
अर्थ समर्पित जिन-चरणों में शाश्वत सौख्य प्रदाता॥4॥

ॐ ह्रीं श्री पुण्यपापाधिकारसमन्वित-समयसारपरमागमाय नमः अर्थं नि. स्वाहा।

(सोरठा)

शिव-नगरी का पन्थ, पुण्य-पाप से दूर है।

धन्य मार्ग निर्ग्रन्थ, अर्पित हैं श्रद्धा-सुमन॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

(60) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

5

आस्त्रवाधिकार समन्वित समयसार के लिए अर्द्ध्यं

(दोहा)

अशुचि और विपरीत ये, आस्रव हैं दुखरूप।
परम पवित्र निजात्मा, का अनुभव सुखरूप॥

(रोला : तर्ज - ज्ञान-समान न आन जगत में...)

मिथ्या अविरति योग कषाय अचेतन चेतन।

इनमें जो चित्रूप वही चैतन्य परिणमन ॥

पूर्वबद्ध जड़ कर्म आस्था का कारण है।

उनमें कारणपन का कारण रागादिक है॥11॥

जीवों के रागादि भाव से ही बन्धन है।

ज्ञानी राग रहित होने से बन्ध रहित है॥

फल पककर खिर जाता, फिर नहिं जूड़े वृक्ष से।

पूर्व कर्म खिरकर नहिं जुड़ते पुनः जीव से॥2॥

ਦਰ්ਸਨ-ਯਾਨ-ਚਹਿਰਾ ਪ੍ਰਿਣਮਤੇ ਜਧਨ ਭਾਵ ਸੇ।

जीव तभी बँधते हैं विध-विध जड़ कर्मों से॥

चारों प्रत्यय कर्म-बन्ध के कारण होते।

राग रहित होने से ज्ञानी तो नहिं बँधते॥३॥

ਸੁਚਾ ਸੋਂ ਜੋ ਕਰਮ ਪੜੇ ਕੇ ਭੋਗਿ ਨਹੀਂ ਹੈ।

उदय काल में भोग्य हए तब बन्धन ही है॥

हे जिन! अर्ध्य समर्पित करता आज चरण में।

आस्त्रव-बन्ध रहित जायक की लहाँ शरण में॥१४॥

ॐ ह्रीं श्री आस्त्रवाधिकारसमन्वित-समयसारपरमागमाय नमः अर्घ्यं नि स्वाहा।

(सोरठा)

सुखमय चेतन भाव. आस्त्रव दख कारण कहे।

रच्यं निरास्त्रव भाव, अर्पित श्रद्धा-समन ॥

(इति पृष्ठांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

संवराधिकार समन्वित समयसार के लिए अर्द्ध

(दोहा)

शुद्धि की उत्पत्ति ही, संवर भाव सुजान।
स्वानुभूति रसमय अहो, स्व-पर भेदविज्ञान॥

(जोगीरासा)

द्रव्य भाव नोकर्म रहित मैं दर्शन-ज्ञान स्वरूपी।
मैं उपयोग स्वभावी मुझमें है उपयोग सदा ही॥
इस प्रकार जब जीव जानता सम्यक् रूप निजातम।
तब उपयोग सिवाय अन्य का कर्ता हो नहिं आतम॥1॥
यथा अग्नि-संतप्त स्वर्ण भी स्वर्णपना नहिं तजता।
वैसे कर्म प्रतप्त जीव भी ज्ञान स्वभाव न तजता॥
शुद्ध जानता जो अपने को वही शुद्धता पाता।
जो अशुद्ध जाने आतम को वह अशुद्धता पाता॥2॥
सर्व संग परित्याग निजातम चिट्रूपी जो ध्याते।
अल्प काल में वे भवि प्राणी कर्म रहित हो जाते॥
ज्ञानी को मिथ्या-अविरति-अज्ञान-योग नहिं होते।
अतः निरास्त्र रहते ज्ञानी कर्मों से नहिं बँधते॥3॥
कर्म-बन्ध नहिं हुआ अतः नोकर्म-संयोग न होता।
जब मिलता नोकर्म नहीं तो फिर संसार न होता॥
भेदज्ञानमय अर्द्ध समर्पित है जिनवर चरणों में।
स्वानुभूतिमय पद अनर्द्ध विलसित हो परिणामों में॥4॥
ॐ हीं श्री संवराधिकारसमन्वित-समयसारपरमागमाय नमः अर्द्धं नि. स्वाहा।

(सोरठा)

निर्मल संवर भाव, चेतन-रस में प्रकट हो।

ध्याऊँ निज ध्रुव भाव, अर्पित हैं श्रद्धा-सुमन॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

(62) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

7

निर्जराधिकार समन्वित समयसार के लिए अर्द्ध

(दोहा)

वृद्धिंगत निज शुद्धता से विभाव की हान।
सहज खिरें जड़ कर्म भी, यह निर्जरा बखान॥

(मरहठा माधवी)

चेतन और अचेतन द्रव्यों को ज्ञानी जन भोगते।
किन्तु अरुचि से सेवन करते पुनः कर्म नहिं बाँधते॥
ज्ञानी करें विषय-सेवन तो भी उनको नहिं भोगते।
राग-भाव को भिन्न जानते ज्ञान-भाव को वेदते॥1॥

यदि किंचित् भी रागादिक की रुचि वर्ते श्रद्धान में।
सर्वांगम ज्ञाता हो फिर भी उसे न आतम ज्ञान है॥
मति श्रुत अवधि मनःपर्यय अरु अनुपम केवलज्ञान भी।
एक ज्ञानपद के अभिनन्दन में अर्पित सुखधाम ही॥2॥

इसमें ही सन्तुष्ट रहो नित लीन रहो इस ज्ञान में।
तृप्त इसी में रहो सदा तो होवे मोक्ष महान है॥
वेदक-वेद्य भाव दोनों प्रतिसमय विलय को प्राप्त हों।
इसीलिए ज्ञानी दोनों की वांछा से परिमुक्त हों॥3॥

ज्ञानी सदा निशंकित रहते इसीलिए निर्भय रहें।
सप्त भयों से रहित हुए हैं अतः निशंकित ही रहें॥
हे प्रभु! निज आश्रय से मुझको हो संवर अरु निर्जरा।
पद अनर्द्ध की प्राप्ति हेतु यह अर्द्ध समर्पित है खरा॥4॥

ॐ ह्रीं श्री निर्जराधिकारसमन्वित-समयसारपरमागमाय नमः अर्द्धं नि. स्वाहा।
(सोरठा)

ज्ञानी के परिणाम, सदा ज्ञान-वैराग्यमय।
पाऊँ शिवसुख धाम, अर्पित हैं श्रद्धा-सुमन॥
(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

बन्धाधिकार समन्वित समयसार के लिए अर्द्ध

(दोहा)

बन्धन का कारण कहा, मात्र कु-अध्यवसान।

निज निरखे निर्बन्ध जब, होय बन्ध-अवसान॥

(हरिगीतिका)

चिकनाई हो यदि देह में तो धूल तन से चिपकती।
त्यों राग की चिकनाई से ही कर्म धूली चिपकती॥
हिंसा तथा भोगेपभोगादिक क्रिया ज्ञानी करें।
पर राग के सद्भाव बिन वे कर्म-रज से नहिं बँधें॥11॥

मैं हूँ बचाता मारता सुख दुख देता अन्य को।
अन्य भी मुझको करें, अभिप्राय यह मिथ्या कहो॥
मरण होता आयु क्षय से उदय से जीवित रहें।
निज कर्म-फल से ही जगत में जीव सुख-दुख भोगते॥12॥

परवस्तु में कर्तृत्व का अभिप्राय अध्यवसान से -
उत्पन्न हों रागादि जिनसे पाप अथवा पुण्य है॥
ब्रत समिति गुप्ति शील जप तप आदि का पालन करे।
किन्तु मिथ्यादृष्टि अज्ञानी नहीं मुक्ति लहे॥13॥

ज्यों लालिमा के योग से स्फटिक दिखता लालमय।

रागादि के संयोग से ही जीव दिखता रागमय॥

यह अर्द्ध अर्पित कर प्रभो! निज को लखुँ निर्बन्ध मैं।

ध्याऊँ अबद्धु अनर्द्ध चिन्मय क्षय करूँ अब बन्ध मैं॥14॥

ॐ हीं श्री बन्धाधिकारसमन्वित-समयसारपरमागमाय नमः अर्द्ध नि. स्वाहा।

(सोरठा)

त्यागूँ अध्यवसान, स्व-पर भेद विज्ञान से।

पाऊँ सम्यग्ज्ञान, अर्पित हैं श्रद्धा-सुमन॥

(इति पुष्टांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

(64) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

9

मोक्षाधिकार समन्वित समयसार के लिए अर्द्ध

(दोहा)

सिद्ध होंय चिरकाल से, भेदज्ञान से जीव।

भटक रहे संसार में, भेदज्ञान बिन जीव॥

(रोला)

विविध भाँति यदि बन्धभाव का चिन्तन करता।

मात्र विकल्पों से बन्धन से मुक्त न होता॥

चेतन और बन्ध के लक्षण जुदे-जुदे हैं।

भेद-ज्ञान करते ज्ञानी प्रज्ञा-छैनी से॥1॥

प्रज्ञा द्वारा चेतन में ही हो अपनापन।

चेतन से जो भिन्न न उनमें हो अपनापन॥

निज को चिन्मय अन्य द्रव्य को भिन्न जानता।

फिर पर में अपनापन कैसे हो ज्ञानी का!॥2॥

जो अपराध करे वह नर नित शंकित रहता।

जो न करे अपराध निशंकित वह नर रहता॥

अपराधी को बन्धन की चिन्ता नित रहती।

जीव निरपराधी को चिन्ता कभी न होती॥3॥

प्रतिक्रमण निन्दा गर्हा विषकुम्भ कहे हैं।

स्वाश्रित अप्रतिक्रमण आदि को अमृत कहते॥

प्रभो! भक्ति का राग कहो कैसे अरपूँ मैं।

निश्चय-भक्ति अनर्द्ध, भावना अब भाऊँ मैं॥4॥

ॐ हीं श्री मोक्षाधिकारसमन्वित-समयसारपरमागमाय नमः अर्द्ध नि. स्वाहा।

(सोरठा)

नहीं मोक्ष का वेश, निज चैतन्य स्वभाव में।

निज में करूँ प्रवेश, अर्पित हैं श्रद्धा-सुमन॥

(इति पुष्टांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

सर्वविशुद्धज्ञानाधिकार समन्वित समयसार के लिए अर्द्ध

नव तत्त्वों के स्वांग में, विलसे ज्ञायक भाव।
स्वानुभूति में नित बसे, परम अकर्ता भाव॥

(वीरच्छन्द)

सर्वविशुद्ध ज्ञान अधिकार दिखाता परम अकर्ता भाव।
अपने-अपने परिणामों का कर्ता है - यह द्रव्य स्वभाव॥
राग-भाव का कर्ता है अज्ञानी निज को भूल रहा।
ज्ञानी राग-भाव का ज्ञाता निज स्वभाव को जान रहा॥1॥
जैसे चक्षु रहे अकारक और अवेदक वस्तु का।
शुद्ध ज्ञान नहिं कारक-वेदक होता बन्धन-मुक्ति का॥
मैं जीवों की रक्षा करता हूँ यदि मुनि ऐसा माने।
कर्ता माने जग विष्णु को दौनों ही नहिं मुक्ति लहें॥2॥
नहीं अकर्ता जीव सर्वथा, निज-भावों का कर्ता है।
जो कर्ता है वही भोगता, नहीं सर्वथा क्षणिक कहें॥
जैसे कलई न अन्य वस्तु की वह तो मात्र कलई ही है।
ज्ञायक भी है नहीं अन्य का, ज्ञायक तो बस ज्ञायक है॥3॥
शिवपथ में निज को स्थापित कर निज को ध्यावें भविजन।
लिंग ममत्व तज निज में विचरें लहें समय का सार सुजन॥
समयसार यह ग्रन्थ प्रभो मम श्रद्धा-ज्ञान-चरित्र बसे।
कारण-कार्य समय को अर्द्ध समर्पित कर ज्ञायक विलसे॥4॥
ॐ ह्रीं श्री सर्वविशुद्धज्ञानाधिकारसमन्वित-समयसारपरमागमाय नमः अर्द्ध
निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

कहा ग्रन्थ का सार, सर्व विशुद्ध स्वभाव है।
लहूँ समय का सार, अर्पित हैं श्रद्धा-सुमन॥
(इति पुष्टांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

(66) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

महाध्य

(दोहा)

ग्रन्थराज प्राभृत-समय, कहे अटल सिद्धान्त।

महा-अर्ध्य अर्पित प्रभो, पाऊँ भव का अन्त॥

(मरहठा माधवी)

अहो! वीर की दिव्य देशना परम्परा से प्राप्त कर।
साक्षात् सीमन्धर प्रभु की दिव्यध्वनि के भाव भर॥।
भरत क्षेत्र के जीव दुखी हैं निज स्वरूप नहिं जान कर।
मुनिवर कुन्दकुन्द ने करुणा-रस से निज परिणाम भर॥1॥

‘एवि होदि अपमत्त पमत्तो’ शाश्वत ज्ञायक भाव है।
पाँच भावमय कहे शुद्धनय शाश्वत ध्रुव भूतार्थ है॥।
सम्यगदृष्टि को है आश्रय निज भूतार्थ स्वभाव का।
‘अहमिकको खलु सुद्धो दंसण-णाणमई’ निज भाव का॥2॥

कर्ता-कर्म स्वरूप दिखाया पुण्य-पाप द्वय एक हैं।
ज्ञानी सदा निरास्रव रहते, नहीं क्रोध उपयोग में॥।
दिखें भोग में किन्तु ज्ञानिजन करें कर्म की निर्जरा।
प्रज्ञाछैनी से ज्ञानीजन क्षय करते हैं बन्ध का॥3॥

पर का सदा अकर्ता निज का कर्ता ज्ञायक भाव है।
किन्तु दृष्टि का विषय सदा ही निष्क्रिय चिन्मय भाव है॥।
समयसारमय चिन्तन जीवन, स्व-संवेदन ज्ञान हो।
महा-अर्ध्य अर्पित है प्रभुवर! ज्ञायक का श्रद्धान हो॥4॥

ॐ ह्रीं श्री शुद्धात्मप्रतिपादक-समयसारपरमागमाय नमः महार्घ्य नि. स्वाहा।

(सोरठा)

महके चिन्मय गन्ध, खिलें सुमन प्रभु समय के।

निज को लखूँ अबन्ध, अर्पित हैं श्रद्धा-सुमन॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

जयमाला

(दोहा)

इस प्रकार संक्षेप में, कहा ग्रन्थ का सार।
अर्पित यह जयमालिका, गुरु-पद निज उर-धार॥

(वीरछंद)

वीर जिनेश्वर गौतम गुरु मुनि कुन्दकुन्द को नमन करूँ।
आत्मख्याति दाता मुनि अमृतचन्द्र और जयसेन नमूँ॥
नव तत्त्वों में छिपी हुई चैतन्य ज्योति है प्रकट अहो।
अद्वितीय यह जगत चक्षु नित समयसार जयवन्त रहो॥1॥

जो प्रमत्त अप्रमत्त नहीं है शाश्वत चेतन ज्ञायक भाव।
जिसको कभी न छू सकते वर्णादि और रागादि विभाव॥
अतः नहीं रागादि विभावों का कर्ता चैतन्य अहो।
अद्वितीय यह जगत चक्षु नित समयसार जयवन्त रहो॥2॥

लौह शृंखला अशुभभाव तो स्वर्ण शृंखला है शुभभाव।
दोनों ही हैं बन्ध हेतु, नहिं चेतन में उनका सदृभाव॥
जो चहुँगति में भ्रमण कराये कैसे उसे सुशील कहो।
अद्वितीय यह जगत चक्षु नित समयसार जयवन्त रहो॥3॥

द्रव्यास्त्र से स्वतः भिन्न अरु भावास्त्र का हुआ अभाव।
ज्ञानी सदा निरास्त्र रहते रहे ज्ञानमय ज्ञायक भाव॥
यहाँ यही तात्पर्य कहा है सदा शुद्धनय ग्रहण करो।
अद्वितीय यह जगत चक्षु नित समयसार जयवन्त रहो॥4॥

आत्मतत्त्व की उपलब्धि से होता है संवर साक्षात्।
आत्म प्राप्त हो भेदज्ञान से अतः उसे ही करना प्राप्त॥

(68) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

भेदज्ञान के उद्यम से ही शुद्ध तत्त्व उपलब्ध अहो।
अद्वितीय यह जगत चक्षु नित समयसार जयवन्त रहो॥५॥

ज्ञान-विराग शक्ति से ज्ञानी यद्यपि करें विषय सेवन।
सेवक, किंतु असेवक जानो क्योंकि न भोगे उनका फल॥

विपदाओं के लिए अपद जो वही एक पद स्वाद्य अहो।
अद्वितीय यह जगत चक्षु नित समयसार जयवन्त रहो॥६॥

जब उपयोग और रागादिक एकरूप भासित होते।
निश्चय से बस इसी हेतु से पुरुष कर्म से हैं बँधते॥

किंतु अरे! स्वच्छन्द प्रवर्तन कर्म बन्ध का कारण हो।
अद्वितीय यह जगत चक्षु नित समयसार जयवन्त रहो॥७॥

प्रज्ञा-छैनी द्वारा जो जन, जीव-बन्ध को भिन्न लखे।
सावधान होकर पैनी प्रज्ञा-छैनी ज्ञानी पटके॥

सहज परम आनन्दरूप रसयुक्त परम उत्कृष्ट अहो।
अद्वितीय यह जगत चक्षु नित समयसार जयवन्त रहो॥८॥

कर्ता-भोक्ता भावों का जो भले प्रकार विनाश करे।
बन्ध-मोक्ष की रचना से भी कदम-कदम पर दूर रहे॥

शुद्ध-शुद्ध जो निर्मल निश्चल निज रस से भरपूर अहो।
अद्वितीय यह जगत चक्षु नित समयसार जयवन्त रहो॥९॥

ॐ ह्रीं श्री शुद्धात्मतत्त्वप्रकाशक-समयसारपरमागमाय अनर्थपदप्राप्तये
जयमालापूर्णार्द्धं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

अद्वितीय जग-चक्षु यह, समयसार जयवन्त।
परिणति में विलसे प्रभो, निर्ग्रन्थों का पन्थ॥

(इति पुष्टांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

जाप्य मन्त्र - ॐ ह्रीं श्रीशुद्धात्मतत्त्वप्रकाशक-परमागमसमयसाराय नमः ।

अन्तिम प्रशस्ति

(दोहा)

धन्य जिनेश्वर देव हैं, धन्य गुरु निर्ग्रन्थ।
जिनकी वाणी में बसे, स्वानुभूति शिवपन्थ॥

भक्तिभाव से रच गया, यह संक्षिप्त विधान।
व्यय हो पूर्ण विकार का, हों निर्मल परिणाम॥

स्वर व्यंजन मात्रादि या भावों की हो भूल।
ध्यानाकर्षित बुध करें, हो सुधार अनुकूल॥

यथा अकर्ता हैं गुरु, अमृतचन्द्राचार्य।
मुझमें भी कर्तृत्व का, लेश न होय विकार॥

इस रचना के काल में, ज्ञात और अज्ञात।
हुए सभी अपराध जो, क्षमा करें जिनराज॥

पंच प्रभू जयवन्त हों, जिनशासन जयवन्त।
श्रीजिन-चरण-प्रसाद से, हो विकल्प का अन्त॥

दो सहस्र सोलह वरष, सावन पूरण चन्द्र।
पूर्ण हुई रचना अहो, भविजन को आनन्द॥

यहाँ मात्र संक्षेप में, कहा ग्रन्थ का सार।
लघु विधान के रूप में, भावों का विस्तार॥

किन्तु पूर्ण इस ग्रन्थ का, है विधान कर्तव्य।
परिचय हो सम्पूर्ण का, करें सुनिश्चित भव्य॥

(इसके पश्चात् पृष्ठ 237-238 पर दिए गए महार्घ्य एवं शान्ति पाठ पढ़ें।)

(70) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

परिक्रमा गीत

यह समयसार का सार, मुक्ति का द्वार, समझ लो प्राणी।
इसमें है मुक्ति-निशानी॥

तीर्थकर की वाणी इसमें, इससे न अधिक कुछ भी जग में।
भूतार्थ दृष्टि से होते सम्यग्ज्ञानी, इसमें है मुक्ति-निशानी।
यह समयसार का सार....।

मुनि कुन्द हुए इस भूतल पर, सीमन्धर प्रभु के दर्शन कर।
परमागम में गृणी जिनवर की वाणी, इसमें है मुक्ति-निशानी॥
यह समयसार का सार....।

यह ज्ञायक भाव दिखाता है, तन-चेतन भिन्न बताता है।
एकत्व-विभक्त स्वरूप कहे सुखदानी, इसमें है मुक्ति-निशानी॥
यह समयसार का सार....।

नव तत्त्वों से यह भिन्न कहे, चेतन को एक अभिन्न कहे।
हैं पुण्य-पाप आस्त्र दोनों दुखदानी, इसमें है मुक्ति-निशानी॥
यह समयसार का सार....।

निज को पर का कर्ता माने, वह ज्ञान-स्वभाव नहीं जाने।
रागादि विभावों का कर्ता अज्ञानी, इसमें है मुक्ति-निशानी॥
यह समयसार का सार....।

श्री प्रवचनसार परमागम विधान

(यह विधान करने से पूर्व समय की अनुकूलता के अनुसार
आचार्य कुन्दकुन्द पूजन, आचार्य अमृतचन्द्र पूजन एवं
आचार्य जयसेन पूजन का आनंद अवश्य लेवें।)

मंगलाचरण

(दोहा)

नमूँ परम चैतन्य को सुख-सम्पति दातार।
नमूँ सिद्ध परमेष्ठि को परमागम का सार॥1॥
वीतराग जिनश्रुत नमूँ नमूँ गुरु निर्गन्थ।
शुभ विधान का उदय हो उछले हृदय तरंग ॥2॥
प्रवचनसार महान यह दिव्य-ध्वनि का सार।
कुन्दकुन्द मुनि ने रचा भविजन को हितकार॥3॥
टीका ‘तत्त्वप्रदीपिका’ अद्भुत रचनाकार।
अमृतचन्द्राचार्य गुरु खोले भाव अपार॥4॥
रची ‘वृत्ति-तात्पर्य’ शुभ गुरु जयसेनाचार्य।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान अरु चरण तीन अधिकार॥5॥
पद-पंकज जिनराज के उर में बसें सदैव।
सफल होय संकल्प मम यही कामना एक ॥6॥

(हरिगीतिका)

सार प्रवचनसार का मैं भक्तिपूर्वक कह रहा।
ग्रन्थ के ही भाव अति-संक्षेप में अब भर रहा॥
रतनत्रय के रस भरे अधिकार इसमें तीन हैं।
श्रद्धा-सुमन अर्पित करूँ जो मोक्षमार्ग प्रवीण हैं॥7॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

(72) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

श्री प्रवचनसार परमागम पूजन

स्थापना (मरहठा माधवी)

दिव्यध्वनि का सार परिणमे हे प्रभु! मम श्रुतज्ञान में।
देव-शास्त्र-गुरु की प्रतीति हो निज निर्मल श्रद्धान में॥
प्रभो! ग्रन्थ का भाव समझकर निरखूँ ज्ञान-स्वभाव मैं।
ज्ञान और आनन्द अतीन्द्रिय क्षायिकमय निजभाव में॥1॥
ज्ञान-ज्ञेय की हो प्रतीति मेरे सम्यक् श्रद्धान में।
ज्ञान-मात्र का ही वेदन हो मम अन्तर्मुख ज्ञान में॥
चरण बढ़े निर्ग्रन्थ मार्ग पर -यही भावना वर्तती।
आहवानन स्थापन सन्निधिकरण करे मम परिणति॥2॥

(दोहा)

ज्ञान-दर्श एवं चरण से भूषित परिणाम।

मंगलमय पूजन करूँ पाऊँ शाश्वत धाम॥3॥

ॐ हर्षं परमश्रुतस्कन्धस्वरूप-श्रीप्रवचनसारपरमागम! अत्र अवतर अवतर संवौषट् । (इति आहवानम् ।)

ॐ हर्षं परमश्रुतस्कन्धस्वरूप-श्रीप्रवचनसारपरमागम! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः । (इति स्थापनम् ।)

ॐ हर्षं परमश्रुतस्कन्धस्वरूप-श्रीप्रवचनसारपरमागम! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् । (इति सन्निधिकरणम् ।) (इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

(वीरछन्द)

ज्ञान-ज्ञेय एकत्व बुद्धि के मिथ्यामल से मलिन हुआ।

ज्ञान-ज्ञेय को भिन्न जानकर महा मोह प्रक्षाल किया॥

वीरनाथ कुन्दामृत गुरु जयसेन वचन रसपान करूँ।

ज्ञान-मात्र को ज्ञेय बनाकर ज्ञान-भवन में ही विचरूँ॥

ॐ हर्षं परमश्रुतस्कन्धस्वरूप-श्रीप्रवचनसारपरमागमाय जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वापामीति स्वाहा।

प्रभु अनादि अज्ञान भाव में भायी मुझे ज्ञेय की गन्ध।

किन्तु आपने हमें बताई गन्ध-विहीन ज्ञान की गन्ध॥

वीरनाथ कुन्दामृत गुरु जयसेन वचन से ताप हरूँ।

ज्ञान-मात्र को ज्ञेय बनाकर ज्ञान-भवन में ही विचरूँ॥

ॐ ह्रीं परमश्रुतस्कन्धस्वरूप-श्रीप्रवचनसारपरमागमाय संसारताप-विनाशनाय
चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

इन्द्रियज्ञान पराश्रित परिणति ग्रहण करे विषयों के खंड।

किंतु अखंडित ज्ञानतत्त्व का ध्रुव प्रवाह नित बहे अखंड॥।

वीरनाथ कुन्दामृत गुरु जयसेन वचन-अक्षत निरखूँ।

ज्ञान-मात्र को ज्ञेय बनाकर ज्ञान-भवन में ही विचरूँ॥।

ॐ ह्रीं परमश्रुतस्कन्धस्वरूप-श्रीप्रवचनसारपरमागमाय अक्षयपद-प्राप्तये
अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञेय-लुब्धता विषय-वासना में अनादि से मूर्च्छित हूँ।

प्रभो! आज चैतन्य सुमन के अनुभव रस से सिंचित हूँ॥।

वीरनाथ कुन्दामृत गुरु जयसेन वचन से ब्रह्म लखूँ।

ज्ञान-मात्र को ज्ञेय बनाकर ज्ञान-भवन में ही विचरूँ॥।

ॐ ह्रीं परमश्रुतस्कन्धस्वरूप-श्रीप्रवचनसारपरमागमाय कामबाण-विध्वंसनाय
पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

क्रम-क्रम से सब ज्ञेय लखे पर ज्ञेय-लुब्धता नहीं मिटी।

परम तृप्ति-दायक ज्ञायक की अनुभव कला आज प्रकटी॥।

वीरनाथ कुन्दामृत गुरु जयसेन वचन से तृप्ति लहूँ।

ज्ञान-मात्र को ज्ञेय बनाकर ज्ञान-भवन में ही विचरूँ॥।

ॐ ह्रीं परमश्रुतस्कन्धस्वरूप-श्रीप्रवचनसारपरमागमाय क्षुधारोग-विध्वंसनाय
नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान ज्ञेय गत, ज्ञेय ज्ञान गत जिनवर यह व्यवहार कहें।

किन्तु ज्ञान में सहज ज्ञान का स्व-पर प्रकाशक दीप जले॥।

वीरनाथ कुन्दामृत गुरु जयसेन वचन से निज निरखूँ।

ज्ञान-मात्र को ज्ञेय बनाकर ज्ञान-भवन में ही विचरूँ॥।

ॐ ह्रीं परमश्रुतस्कन्धस्वरूप-श्रीप्रवचनसारपरमागमाय मोहान्धकार-
विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

(74) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

ज्ञेय-वासना से प्रभु! मेरा पर्यावरण अशुद्ध हुआ।
ज्ञान-ज्ञेय के भेदज्ञान से वातावरण विशुद्ध हुआ॥
वीरनाथ कुन्दामृत गुरु जयसेन वचन से कर्म नशूँ।
ज्ञान-मात्र को ज्ञेय बनाकर ज्ञान-भवन में ही विचरुँ॥

ॐ ह्रीं परमश्रुतस्कन्धस्वरूप-श्रीप्रवचनसारपरमागमाय अष्टकर्म-विध्वंसनाय
धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

इष्ट-अनिष्ट ज्ञेय को माना तो सुख-दुख के फल भोगे।
प्रभो! आज ज्ञायक के अनुभव का शाश्वत सुखफल मोहे॥
वीरनाथ कुन्दामृत गुरु जयसेन वचन से शिवफल लूँ।
ज्ञान-मात्र को ज्ञेय बनाकर ज्ञान-भवन में ही विचरुँ॥

ॐ ह्रीं परमश्रुतस्कन्धस्वरूप-श्रीप्रवचनसारपरमागमाय मोक्षफल-प्राप्तये
फलं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञेयों का मूल्यांकन करके जड़ वैभव को अपनाया।
प्रभो! आज ज्ञायक वैभव लख पद अनर्थ निज में पाया॥
वीरनाथ कुन्दामृत गुरु जयसेन वचन वैभव निरखूँ।
ज्ञान-मात्र को ज्ञेय बनाकर ज्ञान-भवन में ही विचरुँ॥

ॐ ह्रीं परमश्रुतस्कन्धस्वरूप-श्री प्रवचनसारपरमागमाय अनर्थपदप्राप्तये
अर्थ निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थावली

1

ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन सम्बन्धी अर्थ (गाथा 1 से 92)
(भूमिका)

(वीरछन्द)

ज्ञान तत्त्व प्रज्ञापन द्वारा जानूँ निज चैतन्य स्वरूप।
ज्ञानमात्र में ही अपनापन कर निरखूँ चेतन-चिद्रूप॥

प्रवचनसार महान ग्रन्थ की गाथाओं के भाव भरूँ।

श्रद्धा-सुमन समर्पित करके अर्द्धावलि आरम्भ करूँ॥

(इति पुष्टांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

...1...

मंगलाचरण एवं पीठिका सम्बन्धी अर्द्ध (गाथा 1 से 12)

संकल्प (अडिल्ल)

ज्ञान तत्त्व प्रज्ञापन गुरुवर कर रहे।

क्षायिक ज्ञानानन्द आत्मरस भर रहे॥

बारह गाथा भाव भरूँ संक्षेप में।

भक्ति भाव बह रहा समस्त प्रदेश में॥1॥

(इति पुष्टांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

(मरहठा माधवी)

पंच प्रभु को वंदन करके दर्शन-ज्ञान प्रधान जो।

साम्यभावमय निर्मल आश्रय निज-परिणति में प्राप्त हो॥

मोह-क्षोभ से रहित साम्यमय चारित से निर्वाण हो।

धर्मरूप परिणमित आत्मा धर्मरूप तत्काल हो॥2॥

भाव शुभाशुभ शुद्धरूप परिणमित जीव तद्रूप है।

गुण पर्याय द्रव्यमय सत्ता रचित वस्तु का रूप है॥

शिवसुख हो शुद्धोपयोग से शुभ से सुरुगति प्राप्त हो।

अशुभ उदय से कुनर पशु नारक गति में दुख प्राप्त हो॥3॥

(दोहा)

इस प्रकार संक्षेप में, लिखा पीठिका सार।

अर्द्ध समर्पित है प्रभो! होऊँ भवदधि पार॥4॥

ॐ हीं श्री पीठिकाविभूषित-प्रवचनसारपरमागमाय नमः अर्द्धं नि. स्वाहा।

(76) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

...2...

शुद्धोपयोग अधिकार सम्बन्धी अध्य

(गाथा 13 से 20)

संकल्प (हरिगीतिका)

शुभ-अशुभ उपयोग को, मुनिराज जानें त्याज्य है।
शुद्धोपयोग सुवृत्ति को वे, आत्मसात् सदा करें॥
अधिकार शुध-उपयोग का, आरम्भ करते श्री गुरु।
श्रद्धा-सुमन अर्पित करें हम, मोक्षपथ करते शुरू॥1॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

(वीरछन्द)

शुद्धोपयोग से सुख होता है अतिशय अनुपम आत्मोपन्न।
सुख-दुख में सम रहे श्रमण जो शुध उपयोगी कहते जिन॥
घाति कर्म से रहित शुद्ध उपयोगी होते हैं सर्वज्ञ।
निज स्वभाव को प्राप्त स्वयंभू त्रिभुवन पूज्य हुए आत्मज्ञ॥2॥
व्ययविहीन उत्पाद और उत्पाद विहीन विनाश लहें।
व्यय-उत्पाद-ध्रौव्यमय हैं सब द्रव्य अतः सद्भूत कहें॥
घातिकर्म से रहित जिनेश्वर प्रकटे जिन्हें चतुष्ट अनंत।
हुए अतीन्द्रिय प्रभु हमारे अब दैहिक सुख दुख का अंत॥3॥

(दोहा)

चिदानन्द रस नित पियें, शुध उपयोगी सन्त।
अर्द्ध समर्पित हम करें, धन्य धन्य निर्गन्थ॥4॥
ॐ हीं श्री शुद्धोपयोग-अधिकार-विभूषित-प्रवचनसारपरमागमाय नमः अर्द्ध
निर्वपामीति स्वाहा।

...3...

ज्ञान अधिकार सम्बन्धी अर्द्ध (गाथा 21 से 52)

संकल्प (दोहा)

ज्ञान और सुख रूप का, करें सुगुरु विस्तार।
गाथा कुल बत्तीस में, कहा ज्ञान अधिकार॥
क्षायिक ज्ञान महान है, क्षायिक सुख है साध्य।
अर्पित हैं श्रुद्धा-सुमन, श्री जिनवर आराध्य॥1॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

(जोगीरासा)

अवग्रह ईहा रहित लखें प्रत्यक्ष सभी कुछ जिनवर।
आत्मा ज्ञान प्रमाण, ज्ञान है सर्व ज्ञेयगत प्रियवर॥
चक्षु-रूपवत् ज्ञान नहीं ज्ञेयों में आता जाता।
जीव अतीन्द्रिय सकल जगत का रहता केवल ज्ञाता॥2॥

श्रुत से जो आगम को जाने श्रुतकेवली कहाता।
सूत्रों की ज्ञप्ति को ही श्रुतज्ञान कहें सब ज्ञाता॥
भूत-भविष्यत पर्यायें भी ज्ञान-मुकुर में झलकें।
यदि क्षायिक भी ज्ञान सके नहिं दिव्य कहें फिर कैसे॥3॥

पुण्योदय में अरहन्तों की गमनादिक पर्यायें।
मोह रहित हैं अतः इन्हें जिन क्षायिक ही बतलायें॥
केवलज्ञानी सर्वद्रव्य गुण-पर्यायों को जानें।
किन्तु ज्ञेयमय कभी न होते अतः अबन्धक वे हैं॥4॥

(दोहा)

सकल ज्ञेय ज्ञायक अहो, अनुपम केवलज्ञान।
अर्द्ध समर्पित है प्रभो! निरखूँ केवल ज्ञान॥5॥
ॐ ह्रीं श्री ज्ञानाधिकार-विभूषित-प्रवचनसारपरमागमाय नमः अर्द्धं नि. स्वाहा।

(78) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

...4...

सुख अधिकार सम्बन्धी अर्थ (गाथा 53 से 68)

संकल्प (हरिगीतिका)

अभेदनय से ज्ञान को ही, सुख कहें आचार्यवर ।
हेय एवं ग्राह्य की, व्याख्या करें श्री गुरु-प्रवर ॥
सुख-अतीन्द्रिय-ज्ञान ही हैं ग्राह्य एवं हेय पर¹ ।
वैभव अनर्थ निजात्म का, ध्याऊँ सदा जिनवर-चरण ॥11॥

(इति पुष्पांजलि क्षिपामि/क्षिपेत्)

(हरिगीतिका)

ज्ञान इन्द्रिय अरु अतीन्द्रिय मूर्त और अमूर्त है।
इस तरह सुख भी उभयविध अतीन्द्रिय ही ग्राह्य है ॥
इन्द्रियाँ पर-द्रव्य हैं अप्रत्यक्ष इन्द्रिय-ज्ञान है।
जो है पराश्रित वह परोक्ष प्रत्यक्ष स्वाश्रित ज्ञान है ॥12॥
ज्ञान-केवल सर्वव्यापी अवग्रहादि विहीन है।
वही सुख है घाति-क्षय है अतः खेद विहीन है ॥
सुर-असुर नर दुखी हैं तो रम्य-विषयों में रमें।
यदि विषय की दव-दाह में नहिं दुखी हों तो क्यों रमें ॥13॥
विषय-सुख भोगे स्वयं ही जीव, तन में सुख नहीं।
विषय-सुख-दुख भोगते सुर देह से नहिं हो सुखी ॥
जीव सुख भोगे स्वयं तो विषय उसमें क्या करें।
नेत्र है नाशक तिमिर के अतः दीपक व्यर्थ है ॥14॥

(दोहा)

इन्द्रिय सुख दुखरूप हैं, कहते श्री जिनराज।

अर्थ समर्पित हे प्रभो! पाऊँ सुख साम्राज्य ॥15॥

ॐ हीं श्री सुखाधिकारविभूषित-प्रवचनसारपरमागमाय नमः अर्थं नि. स्वाहा।

1. पर - इन्द्रिय ज्ञान एवं इन्द्रिय सुख

...5...

शुभ-परिणाम अधिकार सम्बन्धी अर्द्ध (गाथा 69 से 92)

संकल्प (रोला)

कुन्दकुन्द आचार्य-प्रवर अधिकार बखाना,
गुरु-वाणी से शुभभावों का मर्म पिछाना।
शुभ के फल इन्द्रिय-सुख को दुखरूप कहा है,
इसीलिए शुभभावों को विष-कुम्भ कहा है॥1॥

हे प्रभु! जब तक पूर्ण दशा मेरी नहिं होती,
तब तक शुभ परिणति उत्पन्न सहज ही होती।
किन्तु दृष्टि में नाथ! राग-बिन ज्ञायक बसता,
भक्ति-सुमन अर्पित करके चित निज में रमता॥2॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

(वीरछन्द)

इन्द्रादिक तन-पोषण में, नित लीन रहे बहु भोगें भोग।
पुण्योदय से सुखी लगें पर तीव्र विषय-तृष्णा का रोग॥
दुख सन्तप्त हुए तृष्णा से दुख भोगे मृत्यु पर्यन्त।
इन्द्रिय-सुख है पराधीन खण्डित सविघ्न है कहते जिन॥3॥

मोही शुभ चारित्र गहे पर शुद्धात्मा नहिं प्राप्त करे।
जो जाने अरहन्तों को वह निज को लख कर मोह तजे॥
मोह त्याग निज तत्त्व गहे, तज राग-द्रेष निज को पाये।
सब अरहन्त इसी विधि से शिव लहें उन्हें हम नित वन्दे॥4॥

वस्तु स्वरूप प्रकाशक जिन-श्रुत इसीलिए स्वाध्याय करें।
स्वपर भेद-विज्ञान प्रकट कर मोह त्याग दुख-मुक्ति लहें॥
सत्तामय सविशेष पदार्थों की श्रद्धा बिन श्रमण नहीं।
निर्मोही आगम कौशल चारित्र युक्त मुनि धर्ममयी॥5॥

(80) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

(दोहा)

बीतराग शिव पन्थ है, राग भाव में बन्ध।

अर्द्ध समर्पित हे प्रभो! धन्य मार्ग निर्ग्रन्थ॥6॥

ॐ हीं श्री शुभपरिणाम-स्वरूपप्रज्ञापक-प्रवचनसारपरमागमाय नमः अर्द्धं निर्विपामीति स्वाहा।

महार्द्ध

(दोहा)

स्व-पर प्रकाशक शक्तिमय केवलज्ञान स्वभाव।

ज्ञेयाकार अनन्त में उछले ज्ञायक भाव॥1॥

क्षायिक ज्ञान महान है, प्रभु चैतन्य प्रकाश।

पद अनर्द्ध पाऊँ प्रभो! अन्य नहीं कुछ आस॥12॥

ॐ हीं श्री ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापन-विभूषित-प्रवचनसारपरमागमाय नमः अर्द्धं निर्विपामीति स्वाहा।

(वीरछन्द)

कुन्दकुन्द आचार्यदेव ने दिव्यध्वनि का सार लिखा।

अमृतचन्द्राचार्य देवकृत तत्त्वदीपिका है व्याख्या॥

ज्ञान-तत्त्व-प्रज्ञापन करता है पहला अधिकार अहो॥

जब तक बीतराग नहिं होऊँ, उर में जिनवर-भक्ति रहो॥

(इति पुष्पांजलि क्षिपामि/क्षिपेत्)

2

ज्ञेय-तत्त्व-प्रज्ञापन सम्बन्धी अर्द्ध

(गाथा 93 से 200)

संकल्प (वीरछन्द)

द्रव्य और गुण-पर्यायों से जानूँ प्रभु! छह द्रव्य-स्वरूप।
किन्तु ज्ञान में ही अपनापन हो निरखूँ चेतन चिद्रूप॥

प्रवचनसार महान ग्रन्थ की गाथाओं को उर धारूँ।
श्रद्धा-सुमन समर्पित करके अर्घ्यावलि आरम्भ करूँ॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

....1....

द्रव्य-सामान्य अधिकार सम्बन्धी अर्थ (गाथा 93 से 126)

संकल्प (रोला)

व्यय-उत्पाद-ध्रौव्यमय सत् आगम में गाया।
इसीलिए निज का कर्ता है द्रव्य कहाया॥
क्यों कोई पर का कर्ता हो अरे जगत में!
यह निश्चय श्रद्धान-पुष्प अर्पित चरणों में॥1॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

(वीरछन्द)

सभी द्रव्य, गुण पिण्ड और उनमें होती हैं पर्यायें।
पर्यायों में लीन पर-समय स्व-समय लीन रहें निज में॥
द्रव्य अवस्थित है स्वभाव में अतः द्रव्य का सत् निजभाव।
व्यय उत्पाद ध्रौव्यमय है परिणाम द्रव्य का सहज स्वभाव॥2॥

व्यय-उत्पाद-ध्रौव्य वस्तु में रहते हैं अविनाभावी।
किन्तु परस्पर अतद्भाव रहता है गुण-पर्यय में भी॥
द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नय से सत् और असत् उत्पाद।
पर्यायों से अन्य द्रव्य है तन्मय है इसलिए अनन्य॥3॥

व्यय ही है उत्पाद तथा व्यय अरु उत्पाद भिन्न भी है॥
कर्म-मलिन परिणामों से आत्मा को कर्म-बन्ध ही है।
तीन चेतना रूप परिणामे जीव कर्म करता साधन।
सबको ही जो आत्मा जाने उसे शुद्ध आत्मा हो प्राप्त॥4॥

(82) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

(दोहा)

इस प्रकार संक्षेप में कहे द्रव्य सामान्य।

अर्थ समर्पित हे प्रभो! प्रकटे परमानन्द॥५॥

ॐ हीं श्री द्रव्यसामान्यप्रज्ञापक-प्रवचनसारपरमागमाय नमः अर्थं नि. स्वाहा।

...2...

द्रव्य-विशेष अधिकार सम्बन्धी अर्थ

(गाथा 127 से 144)

संकल्प (हरिगीतिका)

षट्-द्रव्य का वर्णन करें, आचार्य इस अधिकार में।

सब द्रव्य का अस्तित्व रहता, स्वयं के विस्तार में॥

षट्-द्रव्य का सदृशान हो, यह भावना मैं भा रहा।

ये व्यक्त हैं मैं हूँ अव्यक्त, सु-पुष्प अर्पण कर रहा॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्।)

(वीरछन्द)

चेतन लक्षण जीव अन्य सब जड़ लक्षण कहते जिनराज।

सभी द्रव्य में सदा प्रवाहित व्यय-स्थिति एवं उत्पाद॥

छह द्रव्यों का निज लक्षण है अन्य द्रव्य से भिन्न अहो।

निज स्वरूप सम्पदा सुशोभित, ज्ञेयतत्त्व का सार कहो॥१॥

कालाणु परमाणु तथा प्रदेश समय का कथन किया।

यदि छह द्रव्य न मानें तो, सर्वज्ञ नहीं स्वीकार किया॥

अतः जिनेन्द्र कथित छह द्रव्यों की सत्ता स्वीकार करूँ।

ज्ञान-ज्ञेय को भिन्न लखूँ मैं चिदानन्द रस-पान करूँ॥२॥

(दोहा)

द्रव्य सुशोभित है सदा, निज में करे विलास।
अर्घ्य समर्पित हे प्रभो! रहे न कुछ अभिलाष॥3॥
ॐ हीं श्री द्रव्यविशेषप्रज्ञापक-प्रवचनसारपरमागमाय नमः अर्घ्य नि. स्वाहा।

...3...

ज्ञान-ज्ञेय विभाग अधिकार सम्बन्धी अर्घ्य (गाथा 145 से 200)

संकल्प (हरिगीतिका)

जो कुछ झलकता ज्ञान में वह ज्ञेय नहीं बस ज्ञान है।
नहिं ज्ञेयकृत किंचित् अशुद्धि सहज स्वच्छ सुज्ञान है॥
परभाव शून्य सुज्ञान मेरा ज्ञानमय ही ध्येय है।
ज्ञान में ज्ञायक अहो! मम ज्ञानमय ही ज्ञेय है॥11॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

(मरहठा माधवी)

चार प्राण से जीता है यह जीव, कथन व्यवहार है -
ये तो पुद्गल रचित, जीव उपयोगमयी परमार्थ है॥
जब उपयोग शुभाशुभ हो तो पुण्य-पाप का बन्ध हो।
हो अभाव शुभ-अशुभ उभय का तो चेतन निर्बन्ध हो॥12॥
देह नहीं मैं मन-वाणी नहिं कारण भी उनका नहीं।
कर्ता कारयिता कर्ता का अनुमोदक भी हूँ नहीं॥
स्निग्ध-रूक्ष से पुद्गल बँधता रागादिक से जीव है।
ज्यों रूपी को जीव जानता वैसे बँधता कर्म से॥13॥
जब आत्मा में राग-द्वेष हो तभी कर्म का आगमन।
जीव करे निज भावों को यह शुद्ध द्रव्य का है वर्णन॥

(84) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

हे प्रभु! निज को ज्ञायक जानूँ निर्विकल्प परिणाम हों।
जिस विधि से जो सिद्ध हुए उस विधि अरु सिद्धों को नमों॥4॥

(सोरठा)

ज्ञान, ज्ञेय से भिन्न, शुद्ध बुद्ध चैतन्यमय।
अर्ध्य समर्पित नाथ, परिणति हो आनन्दमय॥5॥

ॐ ह्रीं श्री ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापनविभूषित-प्रवचनसारपरमागमाय नमः अर्ध्य नि. स्वाहा।

महाधर्य

(दोहा)

ज्ञेय झलकते ज्ञान में, यह कहना व्यवहार।
ज्ञान, ज्ञानमय परिणमे, कहते ज्ञेयाकार॥
ज्ञेयाकार कहें जिसे, वह भी ज्ञान स्वरूप।
महा अर्ध्य अर्पित प्रभो! निरखुँ निज चिद्रूप॥

ॐ ह्रीं श्री ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापनविभूषित-प्रवचनसारपरमागमाय नमः महाधर्य निर्वपामीति
स्वाहा।

(वीरछन्द)

कुन्दकुन्द आचार्यदेव ने, दिव्यध्वनि का सार लिखा।
अमृतचन्द्राचार्य देवकृत, तत्त्वदीपिका है व्याख्या॥
ज्ञेय-तत्त्व-प्रज्ञापन करता, है दूजा अधिकार अहो॥
जब तक वीतराग नहिं होऊँ, उर में जिनवर-भक्ति रहो॥

(इति पुष्पांजलि क्षिपामि/क्षिपेत्)

3

चरणानुयोग चूलिका (गाथा 201 से 275)

संकल्प (दोहा)

निज-स्वभाव का ग्रहण कर, त्यागा पर का संग।
मम-परिणति के संग बसो, परम-गुरु-निर्गन्ध॥

गुण अनन्त निधि के धनी, रत्नत्रय दातार।
हे गुरुवर! आकर बसो, मेरे हृदय मँझार॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

...1...

आचरण-प्रज्ञापन सम्बन्धी अर्थ्य (गाथा 201 से 231)

संकल्प (हरिगीतिका)

द्रव्य की हो सिद्धि यदि तो, चरण की भी सिद्धि है।
अथवा चरण की सिद्धि में ही, द्रव्य की भी सिद्धि है॥
यह जानकर जो शुभाशुभ से, नहिं विरत वे अन्य जन।
द्रव्य से अविरुद्ध चारित, आचरो! हे भव्य जन॥11॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

मत्तस्वैया (तर्ज : मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ...)

अरहन्तों सिद्धों श्रमणों को वन्दन कर दुख-मुक्ति-वांछक।
सबसे लेकर के विदा और पंचाचारों को धारण कर॥
हे गुरुवर! मुझ पर कृपा करो - कहकर गुण-मूल सभी धारे।
छेदोपयुक्त यदि हुआ श्रमण, आलोचन कर प्रायश्चित ले॥12॥

प्रतिबन्ध रहित मुनिवर विचरें निज में प्रतिबद्ध सदा रहते।
परिग्रह से बन्धन निश्चित है मुनिराज परिग्रह को तजते॥
जिसको ग्रहने या तजने से संयम का छेद नहीं होता।
बस वही परिग्रह संग रहता वे तजें देह में भी ममता॥13॥

उत्सर्ग और अपवाद मार्ग को यथायोग्य मुनिवर जानें।
निज-योग्य आचरण करें श्रमण, नहिं मूलगुणों में छेद करें॥
श्री गुरु आहार-विहारादिक में देश काल श्रम को जानें।
वे तन-क्षमता को जान, प्रवर्तन करें अल्प-लेपी होवें॥14॥

(86) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

(दोहा)

सावधान हो यति गर्हें, मार्ग द्विविध निर्गन्थ।

अर्द्ध समर्पित मैं करूँ, प्रकटे शिवपुर पन्थ॥5॥

ॐ ह्रीं श्री आचरणप्रज्ञापनसमन्वित-प्रवचनसारपरमागमाय नमः अर्द्धं नि. स्वाहा।

...2...

मोक्षमार्ग प्रज्ञापन सम्बन्धी अर्द्ध (गाथा 232 से 244)

संकल्प (सोरठा)

स्वानुभूति शिवपन्थ, निर्गन्थों का यह वचन।

हो भवदधि का अंत, अर्पित हैं श्रद्धा-सुमन॥1॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

(जोगीरासा)

आगम से निश्चय निज-पर का करके निज में तन्मय।

श्रमण लहें एकाग्रपने को आगम-चेष्टा सुखमय॥

मुनिवर आगम-चक्षु सहित इन्द्रिय-चक्षु जग प्राणी।

सुर-गण अवधि-चक्षुयुत हैं प्रभु सिद्ध सर्वतः ज्ञानी॥2॥

अज्ञानी जो करे कर्म-क्षय लाख करोड़ों भव में।

तीन गुप्तियुत ज्ञानी करते केवल उच्छ्रवासों में।

जिसे प्रशंसा-निन्दा सुख-दुख शत्रु-मित्र में समता।

स्वर्ण-मृत्तिका जीवन-मृत्यु में भी नहीं विषमता॥3॥

(दोहा)

निज में हो एकाग्रता, यही मुक्ति का पन्थ।

अर्द्ध समर्पित हे प्रभो! नमो-नमो निर्गन्थ॥4॥

ॐ ह्रीं श्री मोक्षमार्गप्रज्ञापक-प्रवचनसारपरमागमाय नमः अर्द्धं नि. स्वाहा।

...3...

शुभोपयोग प्रज्ञापन अधिकार सम्बन्धी अध्य

(गाथा 245 से 270)

संकल्प (दोहा)

गौणरूप से श्रमण को, होता शुभ-उपयोग।
किन्तु मोक्षमग एक ही, कहा शुद्ध-उपयोग॥1॥

(इति पुष्टांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

(मरहठा माधवी)

श्रमण शुद्ध-उपयोगी होते शुभ-उपयोगी भी रहें।
शुध-उपयोगी निरास्त्रवी है शुभयुत आस्त्रव को लहें॥
अरहन्तों के प्रति भक्ति प्रवचन-रत में वात्सल्य हो।
वह प्रशस्त-चर्यायुत मुनि है उसको ही श्रामण्य हो॥2॥
यह प्रशस्त चर्या श्रावक को मुख्य, श्रमण को गौण है।
विषय-कषायों में रत नर को होता केवल पाप है॥
क्षीण हुए हों पाप और सब धार्मिक में समभाव हो।
सेवन करें गुणों का वे नर उन्हें प्राप्त सन्मार्ग हो॥3॥
दीक्षित है निर्ग्रन्थ पन्थ में तप संयम संयुक्त है।
किन्तु करें लौकिक कार्यों को उनको भी लौकिक करें॥
अतः समान गुणों वाले या अधिक गुणों के संग ही।
नित्य रहे दुख से परिमुक्ति के वांछक निर्ग्रन्थ ही॥4॥

(दोहा)

आस्त्रव शुभ-उपयोग से, कहें गुरु निर्ग्रन्थ।

अर्ध्य समर्पित है प्रभो! नमो-नमो शिवपन्थ॥5॥

ॐ हीं श्री शुभोपयोगप्रज्ञापक-प्रवचनसारपरमागमाय नमः अर्द्य नि. स्वाहा।

(88) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

...4...

पंच रत्न सम्बन्धी अर्थ (गाथा 271 से गाथा 275)

संकल्प (दोहा)

पंचरत्न में कह रहे, जिन-शासन का सार।
शिवपथ जगपथ भिन्न लख, परिणति हो अविकार॥11॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)
(हरिगीतिका)

जैन-शासन में प्रभो, श्रद्धानयुत श्रामण्य को।
 मुक्तिपथ में सफल कहते, अफल कहते अन्य को॥
 शुद्ध-उपयोगी श्रमण हैं, ज्ञान-दर्शनमय अहो!॥
 श्रद्धा-समन अर्पित करूँ, वे सिद्धु उनको नमन हो॥12॥

ॐ हर्णि पंचरत्नविभूतिष-श्रीप्रवचनसार-परमागमाय अनर्थपदप्राप्तये अर्थं
निर्वपामीति स्वाहा।

(वीरछन्द)

कुन्दकुन्द-आचार्यदेव ने, दिव्यध्वनि का सार लिखा।
 अमृतचन्द्राचार्यदेव कृत, तत्त्वदीपिका है व्याख्या॥
 मुनि-चर्या-प्रज्ञापन करता, यह तीजा अधिकार अहो॥
 जब तक वीतराग नहिं होऊँ, उर में जिनवर-भक्ति रहो॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

महार्थ

(हरिगीतिका)

आरम्भ-परिग्रह त्याग गुरु निर्गन्थ-पथ पर चल पड़े।
चारित्र-सामायिक प्रतिज्ञा कर निजानंद-रस पियें॥
छेद यदि हो तो मुनीश्वर उपस्थापन भी करें।
शिव-पन्थ पर बढ़ते निरन्तर छेद भव-सन्तति करें॥

ॐ ह्रीं चरणानुयोगचूलिकासमन्वित-श्रीप्रवचनसार-परमागमाय अनर्थपदप्राप्तये
अर्थ्य निर्वपामीति स्वाहा।

समुच्चय महार्थ (दोहा)

(मरहठा माधवी)

प्रवचनसार महान ग्रन्थ, निर्ग्रन्थों का उपकार है।
रत्नत्रयमय निर्मल परिणति, इस विधान का सार है॥1॥

ज्ञान-तत्त्व-प्रज्ञापन में, शुद्धोपयोग अधिकार है।
जिसके फल में केवलज्ञान, निराकुल सुख अविकार है॥
पुण्य-पाप को एक न माने, भ्रमे घोर संसार है।
रत्नत्रयमय निर्मल परिणति, इस विधान का सार है॥2॥

मोह-नाश के हेतु आज, अरहन्तों को पहिचान लूँ।
द्रव्य और गुण-पर्यायों से, जिन-सम निज को जान लूँ॥
शुभ के फल में भी आकुलता, दुख का ही विस्तार है।
रत्नत्रयमय निर्मल परिणति, इस विधान का सार है॥3॥

ज्ञान-ज्ञेय को भिन्न जानकर, सत्-चित्-निज-सामान्य में।
अहो! आज सब ही विशेष हैं, तिरोभूत सामान्य में।
अन्तर्बाह्य परिग्रह-बिन, श्रामण्य, समय का सार है।
रत्नत्रयमय निर्मल परिणति, इस विधान का सार है॥4॥

(दोहा)

अनेकान्तमय वस्तु को, कहता है स्याद्वाद।
अतः दिव्यध्वनि को प्रभो! करूँ समर्पित अर्द्ध॥5॥
निज-परिणति में नित बहे, चिदानन्द रस धार।
महा-अर्द्ध अर्पित करूँ, विनशें सभी विकार॥6॥

ॐ ह्रीं श्री प्रवचनसारपरमागमाय अनर्थपदप्राप्तये समुच्चयमहार्थं नि. स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

जिन-श्रुत-गुरु के चरण में, नमे विनय से भाल।
श्रीगुरु-चरण-प्रसाद से, रचता यह जयमाल॥1॥

(90) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

(वीरछन्द)

सीमन्धर-ध्वनि सार ग्रहण कर, श्री गुरुवर ने ग्रन्थ रचा।
ज्ञान-ज्ञेय का प्रज्ञापन कर निर्ग्रन्थों का पन्थ कहा॥
फल शुद्धोपयोग का गुरु ने, केवलज्ञान दिखाया है।
अहो! अतीन्द्रिय सुख-दर्शन-बल, संग में लेकर आया है॥2॥

व्यय-उत्पाद-ध्रौव्यमय जानूँ, सब पदार्थ हैं ज्ञेय अहो॥
ज्ञेयाकारों में भी गुरुवर, कहते हैं बस ज्ञान लखो॥
फिर भव-सागर तिरने को, गुरु ने श्रामण्य स्वरूप कहा।
शिव-साधन शुद्धोपयोग के अभिनन्दन में ग्रन्थ रचा॥3॥

शुध-उपयोगी श्रमणों को, एकाग्ररूप शिवपथ होता।
उनको ही सब ज्ञेयावलि का, दर्शन-ज्ञान प्रकट होता॥
शुद्ध श्रमण ही ज्ञानानन्द, सहज लक्षण निर्वाण लहें।
टंकोत्कीर्ण परम आनन्दमय, सुस्थित निज शुद्धात्म लहें॥4॥

कौन आत्मा? कैसे मिलता? हुई शिष्य को जिज्ञासा।
ऐसा प्रश्न उठाकर, गुरु ने पूरी कर दी अभिलाषा॥
यह अनन्त धर्मों का स्वामी, इसमें व्यापे चित्-सामान्य।
व्याप्त अनन्त नयों में है श्रुतज्ञान, आत्मा उसमें गम्य॥5॥

सैंतालीस नयों के द्वारा, किया कथन कुछ धर्मों का।
टीका से ज्ञातव्य, यहाँ विस्तार असम्भव मर्मों का॥
विरमें गुरु विस्तार वचन से, भावक-भाव्य-विभाग विलीन।
भाव-नमन कर शुद्धतत्त्व को, हम सब हों अनुभूति प्रवीण॥6॥

(दोहा)

वन्दन अद्भुत ग्रन्थ को, नमूँ नमूँ निर्ग्रन्थ।
करूँ समर्पित अर्द्ध यह, प्रकट होय शिवपन्थ॥7॥

ॐ ह्रीं श्री दिव्यध्वनिसारभूत-श्रीप्रवचनसारपरमागमाय अनर्द्धपदप्राप्तये
जयमालार्द्धं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

जिनगुरु जिनश्रुत-भक्ति से, प्रेरित हुआ विधान।
पढ़ें सुनें भविजन सदा, पावें पद-निर्वाण॥८॥
भाव-द्रव्य की दृष्टि से, यदि हो कोई भूल।
ध्यानाकर्षण बुध करें, शीघ्र लहूं भव-कूल॥९॥

(इति पुष्पांजलि क्षिप्ते/क्षिपामि)

जाप्य मन्त्र - ॐ ह्रीं श्रीपरमागमप्रवचनसाराय नमः।

अन्तिम प्रशस्ति

(दोहा)

धन्य जिनेश्वर देव हैं, धन्य गुरु निर्गन्थ।
जिनकी वाणी में बसे, स्वानुभूति शिवपन्थ॥
भक्तिभाव से रच गया, प्रवचनसार विधान।
व्यय हो पूर्ण विकार का, हों निर्मल परिणाम॥
दो सहस्र सोलह वरष, आठ मई रविवार।
पूर्ण हुई रचना अहो, भविजन को हितकार॥
स्वर व्यंजन मात्रादि या भावों की हो भूल।
ध्यानाकर्षित बुध करें, हो सुधार अनुकूल॥
यथा अकर्ता हैं गुरु अमृतचन्द्राचार्य।
मुझमें भी कर्तृत्व का लेश न होय विकार॥
इस रचना के काल में, ज्ञात और अज्ञात।
हुए सभी अपराध जो, क्षमा करें जिनराज॥
पंच प्रभू जयवन्त हों, जिनशासन जयवन्त।
श्रीजिन-चरण-प्रसाद से हो विकल्प का अन्त॥

(इति पुष्पांजलि क्षिप्ते/क्षिपामि)

(इसके पश्चात् पृष्ठ 237-238 पर दिए गए महार्घ्य एवं शान्ति पाठ पढ़ें।)

परिक्रमा गीत

॥ धन्य धन्य प्रवचनसार ॥

(तर्ज - धन्य-धन्य आज घड़ी)

धन्य धन्य प्रवचनसार, दिव्यध्वनि का सार है।

निर्गन्थों ने ग्रन्थ रचा, अहो ! उपकार है॥१॥

ज्ञान-तत्त्व के प्रज्ञापन में, केवलज्ञान दिखाया है।

ज्ञान ज्ञान में ज्ञेय ज्ञेय में, वस्तु-स्वरूप बताया है॥

पुण्य-फलों का भोग दुखमय, वीतरागता सार है॥२॥

अरहन्तों को द्रव्य और, गुण-पर्यायों से जान लूँ।

मोह नष्ट करने को अपना, निज-स्वरूप पहचान लूँ॥

चेतना से व्याप्त हैं, गुण-द्रव्य और पर्याय हैं॥३॥

व्यय-उत्पाद-श्रौत्यमय जिनवर, कहते सत्-सामान्य को।

चित्-विशेष सब डूबें - ऐसा अनुभव चित्-सामान्य हो॥

अहो ! जन्म-क्षण निश्चित जिनका, ऐसी सब पर्याय हैं॥४॥

चूलिका चरणानुयोग की, गुरुवर-दर्श करा रही।

अन्तर्बाह्य-परिग्रह बिन, श्रामण्यरूप दिखला रही॥

अहो ! शुद्ध उपयोगरूप ही, साधना का सार है।

निर्गन्थों ने ग्रन्थ रचा, अहो ! उपकार है॥५॥

श्री नियमसार परमागम विधान

(यह विधान करने से पूर्व समय की अनुकूलता के अनुसार आचार्य कुन्दकुन्द देव पूजन का आनंद अवश्य लेवें।)

मंगलाचरण

(दोहा)

वीतराग जिन, श्रुत नमूँ, नमूँ गुरु निर्ग्रन्थ।
नियमसार सुविधान की उछले हृदय तरंग॥1॥
निर्ग्रन्थों के पन्थ का नियमसार सन्देश।
कुन्दकुन्द आचार्य का मंगलमय उपदेश॥2॥
पदमप्रभमलधारि मुनि, अद्भुत टीकाकार।
पूजित पंचम-भाव की गूँजे जय-जयकार॥3॥
सर्व दुखों से मुक्ति के लिए, यही कर्तव्य।
रत्नत्रय ही श्रेय है, मंगलमय भवितव्य॥4॥
पद-पंकज जिनराज के उर में बसे सदैव।
सफल होय संकल्प मम, यही कामना एक॥5॥

पीठिका

(हरिगीतिका)

पीठिका सुविधान की मैं लिख रहा हूँ भक्ति से।
शुभ ग्रन्थ का सारांश कहता अल्पश्रुत की शक्ति से॥
स्वानुभूति रस भरे अधिकार बारह ग्रन्थ में।
जीव और अजीव में एकत्व नहिं शिव-पन्थ में॥1॥
हेय हैं जीवादि सब बहितत्त्व, चेतन ग्राहय है।
शुद्धात्मा ही शुद्धभावधिकार का प्रतिपाद्य है॥

(94) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

ब्रत-समिति एवं गुप्ति का वर्णन चरित-व्यवहार में।
चारित्र-निश्चय प्रतिक्रिमण-परमार्थ के अधिकार में॥12॥
अधिकार-प्रत्याख्यान अरु आलोचना गुरुवर कहें।
अधिकार-प्रायश्चित कहा निजतत्त्व में ही लीन हो॥
परम-भक्ति अरु समाधि-परम, मुनिवर ने कही।
दुर्ध्यान के परित्याग में ही परम-सामायिक लही॥13॥
अधिकार-निश्चय-परम-आवश्यक मुनीश्वर ने कहा।
परम जिन-योगीश मुनि है अवश, निजवश ने कहा॥
उपयोग-शुध-अधिकार में निज-पर प्रकाशक ज्ञान का।
जो परम-तत्त्व स्वरूप, भगवन सिद्ध को वन्दन सदा॥14॥

(दोहा)

इस प्रकार संक्षेप में, कहूँ ग्रन्थ का सार।
हे प्रभु! अब पूजा रचूँ, पाऊँ पद अविकार॥15॥

(इति पुष्पांजलि क्षिपामि/क्षिपेत्)

कर लो जिनवर का गुणगान...

कर लो जिनवर का गुणगान, आई सुखद घड़ी।
आई सफल घड़ी, देखो मंगल घड़ी ॥ कर लो..॥
वीतराग का दर्शन पूजन, भव-भव को सुखकारी ।
जिन-प्रतिमा की प्यारी छवि लख, मैं जाऊँ बलिहारी ॥11॥
सम्यग्दर्शन हो जाता है, मिथ्यात्म मिट जाता ।
रत्नत्रय की दिव्य शक्ति से, कर्म- नाश हो जाता ॥ 2॥
निज स्वरूप का दर्शन होता, निज की महिमा आती ।
निज स्वभाव साधन के द्वारा, सिद्ध स्वगति मिल जाती ॥13॥

नियमसार ग्रन्थ के टीकाकार

॥ श्रीमद् पद्मप्रभमलधारिदेव पूजन ॥

स्थापना

(हरिगीतिका)

कारण समय के आश्रय से कार्य परमात्मा हुए।
 अरहन्त सिद्धाचार्य पाठक साधु मम उर में बसें॥
 नियमसार सुग्रन्थ मुनिवर कुन्द की रचना अहो।
 अध्यात्म-सिंधु तरंग उछलें मम हृदय शीतल करो॥1॥

श्री पद्मप्रभमलधारि मुनि पद-पंकजों की सुरभि से।
 कारण समय का सार-रस मम भ्रमर परिणति में बहे॥
 वीर प्रभु अर पद्मनन्दि ग्रन्थकर्ता को नमूँ।
 अध्यात्म-रस भरपूर टीका को सुमति-श्रुत में धरूँ॥2॥

(दोहा)

पद्मप्रभमलधारि मुनि अनुपम टीकाकार।
 पद-पंकज उर-सर खिलें साम्य सुधारस धार॥4॥

ॐ हीं श्री पद्मप्रभमलधारिमुनीश्वर! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
 ॐ हीं श्री पद्मप्रभमलधारिमुनीश्वर! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
 ॐ हीं श्री पद्मप्रभमलधारिमुनीश्वर! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(जोगीरासा)

कारण समयसार-अनुभूति निर्मल जल ले आया।
 कार्य समय तटवासी गुरु को सम्यक् नीर चढ़ाया॥
 हे पद्मप्रभधारि मुनीश्वर मम उर सदा विराजो।
 रत्नत्रय निर्मल जल से मम जन्म जरा निखारो॥

ॐ हीं श्री पद्मप्रभमलधारिमुनीश्वरगय जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय
 जलं निर्विपामीति स्वाहा।

जीव-अजीव सुतत्व प्रकाशक शीतल वचन सुहाये।
 चिदानन्द सुरभित अगन्ध निज नियमसार मन भाये॥

(96) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

हे पद्मप्रभधारि मुनीश्वर मम उर सदा विराजो।
रत्नत्रय शीतल सुगन्ध से भव-आताप निवारो॥

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभमलधारिमुनीश्वराय संसारताप-विनाशनाय चन्दनं
निर्वपामीति स्वाहा ।

अक्षत शुद्ध स्वभावमयी ध्रुव की अन्तर परिणति से।

अक्षत के अक्षत अवलम्बन से अक्षत सुख बरसे॥

हे पद्मप्रभधारि मुनीश्वर मम उर सदा विराजो।

गुरु-चरणों की भक्ति अखंडित अक्षय सुख बरसाओ॥

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभमलधारिमुनीश्वराय अक्षयपद-प्राप्तये अक्षतान्
निर्वपामीति स्वाहा ।

निश्चय संग व्यवहार चरित-सुमनों की सौरभ महके।

गुरु निर्मल निष्काम भाव से काम-वासना हरते॥

हे पद्मप्रभधारि मुनीश्वर मम उर सदा विराजो।

पद-पंकज में मुाध भ्रमर मन को निष्काम बनाओ॥

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभमलधारिमुनीश्वराय कामबाण-विनाशनाय पुष्पं
निर्वपामीति स्वाहा ।

भोग-वासना को अतृप्त लख प्रायश्चित से हरते।

प्रतिक्रमण आलोचन विधि से चिदानन्द रस पीते॥

हे पद्मप्रभधारि मुनीश्वर मम उर सदा विराजो।

निर्विकल्प रस दाता गुरु मम क्षुधारोग विनशाओ॥

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभमलधारिमुनीश्वराय क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं
निर्वपामीति स्वाहा ।

परम समाधि-भक्ति दीप से मोह-तिमिर को हरते।

चित्प्रकाश में चिन्मय-रवि को गुरुवर सदा निरखते॥

हे पद्मप्रभधारि मुनीश्वर मम उर सदा विराजो।

वचन-किरण से गुरुवर मेरा मोह-तिमिर निरवारो॥

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभमलधारिमुनीश्वराय मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं
निर्वपामीति स्वाहा ।

निर्मल ध्यानानल गुरुवर की परिणति निर्मल करती।

गुरु की पर्यावरण विशुद्धि कर्मन्धन विनशाती॥

हे पद्मप्रभधारि मुनीश्वर मम उर सदा विराजो।

शुद्ध हृदय में गुरु-भक्ति मम कर्म-कलंक निवारो॥

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभमलधारिमुनीश्वराय अष्टकर्मविनाशनाय धूपं
निर्वपामीति स्वाहा ।

अहो! शुद्ध उपयोगी गुरुवर सदा स्व-वश ही रहते।

परमावश्यक रत्नत्रय फल-स्वाद निराकुल चखते॥

हे पद्मप्रभधारि मुनीश्वर मम उर सदा विराजो।

शिवफलदाता रत्नत्रय तरु परिणति में विकसाओ॥

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभमलधारिमुनीश्वराय मोक्षफलप्राप्तये फलं
निर्वपामीति स्वाहा ।

सहज ज्ञान की सहज दृष्टि में ध्रुव अनर्थ्य शोभित है।

सहज चतुष्टय ज्ञान-चेतना सहजानन्द भूषित है॥

हे पद्मप्रभधारि मुनीश्वर मम उर सदा विराजो।

ध्रुव अनर्थ्य पद हेतु रत्नत्रय वैभव मम प्रकटाओ॥

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभमलधारिमुनीश्वराय अनर्थ्यपदप्राप्तये अर्थं
निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

(दोहा)

आनन्दामृत रस भरें कलशों में मुनिराज।

गुरु-वचनों का सार ले सहज रची जयमाल॥1॥

(वीरछन्द)

जो त्रिभुवन के गुरु हैं जिनने चार घाति का किया विनाश।

जिनका ज्ञान त्रिलोक-भवन के सकल पदार्थों का आवास॥

एक वही साक्षात् देव हैं उन्हें बन्ध या मोक्ष नहीं।

उन्हें नहीं है कोई मूर्च्छा और कोई चेतना नहीं॥12॥

(98) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

सचमुच इन जिन भगवन्तों में धर्म-कर्म का नहीं प्रपञ्च।
वीतरागमय सदा विराजित अतः अतुल हैं महिमावन्त॥
निज-सुख में हैं लीन सदा वे, शोभावन्त श्री भगवान।
ज्ञान-ज्योति से पूर्ण लोक में छाये मुक्ति-वधू के नाथ॥13॥
मुक्ति का कारण होने से नियमसार अरु उसका फल।
बुध पुरुषों के हृदय-कमल में जो नित रहता है जयवन्त॥
सूत्रकार श्री कुन्दकुन्द ने भक्तिपूर्वक रचा इसे।
वास्तव में वह भव्य-जनों को मोक्ष-महल का मारग है॥14॥
जब तक तारागण से शोभित चन्द्रबिम्ब उज्ज्वल नभ में।
हेय-वृत्ति नाशक यह टीका रहो सज्जनों के उर में॥15॥
पद्मप्रभ नामक उत्तम सागर से जो उत्पन्न अहो।
उर्मिमाल यह सत्पुरुषों के चित में स्थित सदा रहो॥16॥
कविजनरूपी कमलों को विकसाने वाला अद्भुत सूर्य।
सुन्दर पद-समूह द्वारा यह उत्तम शास्त्र रचा भरपूर॥
जो विशुद्ध आत्मा के वांछक जीव इसे धारण करते-
निज मन में, वे परम-श्रीरूपी कामिनी-वल्लभ होते॥17॥

(दोहा)

चरण-कमल जिनराज के, उर में बसे सदैव।
भक्ति-अर्घ्य अर्पित प्रभो! ध्याऊँ निज ध्रुव एक॥18॥
ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभमलधारिमुनीश्वराय अनर्घ्यपद-प्राप्तये जयमाला-
पूर्णाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

वीर-कुन्द मुनि-पद्म को वन्दूं बारम्बार।
अर्पित हैं श्रद्धा-सुमन स्वानुभूति रस-धार॥19॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

॥ श्री नियमसार परमागम पूजन ॥

(मरहठा माधवी)

सहज-शुद्ध कारण-परमात्मा सदा बसे श्रद्धान में।
सहज-ज्ञान भी सदा विराजे स्वसंवेदन-ज्ञान में॥
स्वानुभूतिमय निर्मल-परिणति से भूषित चारित्र हो।
करने योग्य नियम से जो रत्नत्रय मम कर्तव्य हो॥11॥
प्रभो! विकारी भावों का अब तो समूल परिहार हो।
दर्शन-ज्ञान-चरित में मेरे सदा नियम का सार हो॥
कुन्दकुन्द-आचार्य-देव का जन-जन पर उपकार है।
पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि को वन्दन शत बार है॥12॥

(दोहा)

रत्नत्रय के तेज से, ज्योतित निज परिणाम।
आहवानन थापन करूँ, पाऊँ शाश्वत धाम॥13॥

ॐ हीं रत्नत्रयमार्गप्रकाशक-श्रीनियमसारपरमागम! अत्र अवतर अवतर संवौषट् । (इति आहवानम् ।)

ॐ हीं रत्नत्रयमार्गप्रकाशक-श्रीनियमसारपरमागम! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः । (इति स्थापनम् ।)

ॐ हीं रत्नत्रयमार्गप्रकाशक-श्रीनियमसारपरमागम! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् । (इति सन्निधिकरणम् ।)

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

(जोगीरासा)

रत्नत्रय के निर्मल जल से मिथ्यामल प्रक्षालूँ।
प्रभो! आपकी शरण प्राप्त कर अजर अमर पद पा लूँ॥
नियमसार गुरु-कुन्दकुन्द ने अपने लिए बनाया।
सहज ज्ञान-रस भरे कलश से पद्मप्रभ ने सजाया॥
ॐ हीं रत्नत्रयमार्गप्रकाशक-श्रीनियमसारपरमागमाय जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

(100) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

रत्नत्रय की मधुमय सौरभ महक रही चेतन में।
भव-आताप नशाने जिनवर आया चरण-शरण में॥
नियमसार गुरु-कुन्दकुन्द ने अपने लिए बनाया।
सहज ज्ञान-रस भरे कलश से पद्मप्रभ ने सजाया॥

ॐ हर्णि रत्नत्रयमार्गप्रकाशक-श्रीनियमसारपरमागमाय संसारतापा-
विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नत्रय परिणाम अखण्डित अक्षय पद के दाता।
भक्ति अखण्डित प्रकटी प्रभु की, समयसार मन भाता॥
नियमसार गुरु-कुन्दकुन्द ने अपने लिए बनाया।
सहज ज्ञान-रस भरे कलश से पद्मप्रभ ने सजाया॥

ॐ हर्णि रत्नत्रयमार्गप्रकाशक-श्रीनियमसारपरमागमाय अक्षयपदप्राप्तये
अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नत्रय के सुमन सुगन्धित महक रहे चेतन में।
काम-कलंक रहित परिणति हो, प्रभु की चरण-शरण में॥
नियमसार गुरु-कुन्दकुन्द ने अपने लिए बनाया।
सहज ज्ञान-रस भरे कलश से पद्मप्रभ ने सजाया॥

ॐ हर्णि रत्नत्रयमार्गप्रकाशक-श्रीनियमसारपरमागमाय कामबाण-
विधवंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

हे प्रभु! रत्नत्रय-रस पीकर परम तृप्ति कब पाऊँ।
ऐसी भक्ति करूँ आपकी क्षुधा-रोग विनशाऊँ॥
नियमसार गुरु-कुन्दकुन्द ने अपने लिए बनाया।
सहज ज्ञान-रस भरे कलश से पद्मप्रभ ने सजाया॥

ॐ हर्णि रत्नत्रयमार्गप्रकाशक-श्रीनियमसारपरमागमाय क्षुधारोग-
विधवंसनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नत्रयमय सहज ज्योति में चेतन तत्त्व प्रकाशे।
प्रभो आपकी परम भक्ति से मिथ्या-तिमिर विनाशे॥
नियमसार गुरु-कुन्दकुन्द ने अपने लिए बनाया।
सहज ज्ञान-रस भरे कलश से पद्मप्रभ ने सजाया॥

ॐ ह्रीं रत्नत्रयमार्गप्रकाशक-श्रीनियमसारपरमागमाय मोहान्धकार-
विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नत्रय की धूप सुगन्धित कब परिणति में व्यापे।
प्रभु-भक्ति से अब निश्चित ही कर्म-कलंक विनाशे॥
नियमसार गुरु-कुन्दकुन्द ने अपने लिए बनाया।
सहज ज्ञान-रस भरे कलश से पद्मप्रभ ने सजाया॥

ॐ ह्रीं रत्नत्रयमार्गप्रकाशक-श्रीनियमसारपरमागमाय अष्टकर्म-
विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सहज-ध्येय के सहज-ध्यान में रत्नत्रय फल पाऊँ।
प्रभु-भक्ति से निर्वाछक होकर भी शिव-फल पाऊँ॥
नियमसार गुरु-कुन्दकुन्द ने अपने लिए बनाया।
सहज ज्ञान-रस भरे कलश से पद्मप्रभ ने सजाया॥

ॐ ह्रीं रत्नत्रयमार्गप्रकाशक-श्रीनियमसारपरमागमाय मोक्षफल-प्राप्तये
फलं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु-भक्ति का सहज अर्द्ध ले निज-वैभव चित् लाऊँ।
रत्नत्रय-निधि सहज प्राप्त कर पद-अनर्द्ध प्रकटाऊँ॥
नियमसार गुरु-कुन्दकुन्द ने अपने लिए बनाया।
सहज ज्ञान-रस भरे कलश से पद्मप्रभ ने सजाया॥

ॐ ह्रीं रत्नत्रयमार्गप्रकाशक-श्रीनियमसारपरमागमाय अनर्द्धपदप्राप्तये
अर्द्ध निर्वपामीति स्वाहा।

(102) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

1

॥ जीव-अधिकार के लिए अर्द्ध॥

(हरिगीतिका)

नव तत्त्व के श्रद्धान को जिनदेव ने समक्षित कहा।
क्योंकि उसमें भेद-ज्ञान प्रकाश जगमग हो रहा॥
इस भेद-ज्ञान प्रकाश में चैतन्य दृष्टि में बसे।
आइये दृग-ज्ञान-चारित में इसे स्थापित करें॥1॥

(दोहा)

जीव-स्वरूप पिछान कर, पर से दृष्टि हटाय।
निज में निज को थाप कर, शिवपुर-पथ प्रकटाय॥2॥

(इति पुष्पांजलि क्षिपामि/क्षिपेत्)

(दोहा)

निर्मल परिणति से प्रभो! निर्मापित यह अर्द्ध।
निश्चय भक्ति से अहो! पाऊँ पद अन्-अर्द्ध॥3॥
चेतन लक्षण जीव की, सहज रचूँ जयमाल।
सहज भाव की दृष्टि हो, जानूँ निज-पर चाल॥4॥

(वीरछन्द)

वीरनाथ को वन्दन करके श्री गुरुवर ने ग्रन्थ रचा।
शिवपथ एवं शिवफल का मुनिवर ने ग्राह्य स्वरूप कहा।
दर्शन ज्ञान चरित्र नियम से करने योग्य कहें जिनराज।
मिथ्या दर्शन-ज्ञान-चरित परिहार हेतु कहते हैं सार॥5॥
सहज ज्ञान-दर्शन-चरित्र है सहजानन्द स्वभाव त्रिकाल।
पूजित पंचम भाव परिणति कारण शुध पर्याय स्वरूप॥

परमतत्त्व में व्यापक अन्तःतत्त्व स्वरूप प्रत्यक्ष अहो!!
 केवलज्ञान सकल प्रत्यक्ष सदा मम श्रुत में वास करो॥16॥
 तीर्थकर परमागम एवं तत्त्व स्वरूप कहें आचार्य।
 चेतन लक्षण दर्शन-ज्ञान सुभेद प्रभेद अनेक प्रकार॥
 चैतन्य-विवर्तन की ग्रन्थि में ध्रुव चैतन्य पिण्ड निरखूँ।
 अर्घ्य समर्पित प्रभु-चरणों में शाश्वत सुख अनर्घ्य भोगूँ॥17॥
 ॐ ह्रीं जीवतत्त्व-स्वरूपप्रकाशक-श्रीनियमसारपरमागमाय अनर्घ्यपद-
 प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

सम्यग्ज्ञान प्रकाश, प्रकटा इस अधिकार में।
 श्रद्धा-सुमन विशुद्ध, स्वानुभूति रसधार में॥15॥
 (इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

2

॥ अजीव-अधिकार के लिए अर्घ्य॥

(रोला)

पुद्गलादि पाँचों अजीव-द्रव्यों का वर्णन-
 करे जिनागम, क्योंकि देह को माना चेतन॥
 हे प्रभु! तन में अपनेपन का भ्रम मिट जाये।
 दृढ़ सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान का उदय सुहाये॥11॥

(दोहा)

प्रभु! देहादि अजीव से, भिन्न स्वयं को जान।
 रत्नत्रय परिणाम का, परिणति में आहवान॥12॥
 (इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

(104) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

(दोहा)

पाँच अचेतन द्रव्य की, सत्ता जग में जान।
सत्-लक्षण शोभित सभी, चेतन-शून्य पिछान॥3॥

(जोगीरासा)

व्यय-उत्पाद-ध्रौव्य सत्‌मय हैं सभी द्रव्य बतलाये।
पुद्गलादि पाँचों पदार्थ तो चेतन-शून्य दिखाये।।
जीव द्रव्य की नास्ति इनमें अतः अजीव बखान।
जीव शब्द इनमें भी बैठा नास्तिरूप से जाना॥4॥

पुद्गल के परमाणु परस्पर मिलकर खंध कहाते।
स्कन्धों के विविध भेद, जिन-आगम में दिखलाते॥
किन्तु न सुख-दुख भोगे पुद्गल यह जड़त्व की महिमा।
मात्र जीव ही जाने-भोगे यह चेतन की गरिमा॥5॥
धर्माधर्मकाश काल तो सदा शुद्ध परिणमते।
गुण अनन्तमय पर-निरपेक्ष अनादि-निधन सत्‌ रहते॥
किन्तु जीव की क्रियाकलापों में निमित्त कहलाते।
बिना जीव के इन चारों को आगम भी न बताते॥6॥
अपनी-अपनी परिणति के कर्ता ये द्रव्य सभी हैं।
कहलाते हैं निमित्त, किन्तु कर्ता होते न कभी हैं॥
इन द्रव्यों से शिक्षा लेकर स्वयं अकर्ता जानूँ।
पर-कर्तृत्वरूप अज्ञान-भाव अब शीघ्र नशाऊँ॥7॥

ॐ ह्रीं अजीवस्वरूपप्रकाशक-श्रीनियमसारपरमागमाय अनर्घ्यपदप्राप्तये
अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

स्वयं सिद्ध सब द्रव्य हैं, नहिं कोई सम्बन्ध।
पुष्पांजलि अर्पित करूँ निज निरखूँ निर्बन्ध॥8॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

॥ शुद्धभाव-अधिकार के लिए अर्थ ॥

(अडिल्ल)

शुद्ध जीव का प्रतिपादक अधिकार है।
अद्वितीय यह ग्रन्थ नियम का सार है॥
हे प्रभु! परिणति में आहवानन कर रहा।
स्थापन सन्निधिकरण ज्ञान में हो रहा॥1॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

(दोहा)

निर्विकल्प निज-तत्त्व है, सर्वोत्तम अनमोल।
हे प्रभु! वचनों की तुला पर कैसे हो तोल॥2॥

(हरिगीतिका)

जो चार भावों से अगोचर त्रिविधि कर्म-विहीन है।
विभाव गुण-पर्याय एवं इन्द्रियों से भिन्न है॥
पारिणामिक सहज शुद्ध अमूर्त चेतनरूप है।
कारण-परम-परमात्मा ही आत्मा का रूप है॥3॥

आसन्न भव्य-समूह को वह आत्मा ही ग्राह्य है।
जीवादि सात प्रभेद में खण्डित दिखे, वह हेय है॥
वैराग्यरूपी महल के उन्नत शिखामणि तुल्य जो।
विस्तार इन्द्रिय का नहीं वह देह बस परिग्रह अहो॥4॥

यह सहज-ज्ञान तथा सहज-दृष्टि सदा जयवन्त है।
इस तरह सहज-विशुद्ध-चारित्र भी सदा जयवन्त है॥

(106) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

जो पाप-पुंज विहीन कर्दम-पंक्ति से नित रहित है।

संस्थित सहज-निज-तत्त्व में वह चेतना जयवन्त है॥५॥

ॐ हौं रत्नत्रयस्वरूपप्रतिपादक-श्रीनियमसारपरमागमाय अनर्घ्यपदप्राप्तये
अर्द्धं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

शुद्ध भाव अधिकार, शुद्ध भक्तिमय पुष्प ले।

स्वानुभूति रसधार, अर्पित प्रभु-पद-युगल में॥६॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

4

॥ व्यवहार चारित्र-अधिकार के लिए अर्द्ध ॥

(तर्ज - अपूर्व अवसर ऐसो क्यारे आवशे....)

अपूर्व अवसर ऐसा प्रभु कब आयेगा,

चेतन-उपवन में चारित्र-सुगन्ध हो।

ब्रत समिति गुप्ति संयम के सुमन में,

बीतराग चारित की प्रभुवर! गंध हो॥। अपूर्व॥।

रत्नत्रय के सुमन खिलें उद्यान में,

साम्यभाव से सुरभित चेतन-चन्द्र हो।

निर्ग्रन्थों का पन्थ परम प्रिय हो प्रभो!

निश्चय अरु व्यवहार चरित निर्द्वन्द्व हो॥। अपूर्व॥।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान सुटूँड़ आधार हो,

सम्यक्चारित का अति उन्नत सदन हो।

आश्रय हो निष्क्रिय चैतन्य स्वभाव का,

त्रैकालिक ध्रुव में परिणति का विलय हो॥। अपूर्व॥।

(दोहा)

वीतराग संग रागमय, हो चरित्र-व्यवहार।
 कहें इसे शिवमार्ग पर कथन मात्र-उपचार॥1॥
 परिणति में प्रकटे प्रभो! साम्यभाव चारित्र।
 संग में सहज प्रशस्तमय, हो व्यवहार-चरित्र॥2॥

(इति पुष्पांजलि क्षिपामि/क्षिपेत्)

(मरहठा माधवी)

निजस्वरूप की सहज साधना के संग में शुभ राग है।
 पंच पाप बिन निर्मल परिणति जीवन का सौभाग्य है॥
 उदय-संज्वलन-तीव्र निमित है महाब्रतों के भाव में।
 उसे छोड़कर भी क्षणभर को गुरु रमते निजभाव में॥3॥

सहज भाव से पाँच समिति का शुभ विकल्प मुनिराज को।
 जीवों की रक्षा हेतु ही उर में करुणा भाव हो॥
 यह विकल्प भी रागभाव है सहज ज्ञान का ज्ञेय है।
 रागरहित चैतन्यभाव ही सहज ध्यान का ध्येय है॥4॥

जब यह जीव आकुलित होता राग-द्वेष के भार से।
 कर्म-रजों का होय आगमन मन-वच-तन के द्वार से॥
 अतः मुनीश्वर निजस्वरूप में करें गुप्त उपयोग को।
 सहज त्रिगुप्ति भाव प्रकट हो चिदानंद रस-भोग हो॥5॥

साध्यरूप आदर्श अहो! अरहंत सिद्ध भगवंत हैं।
 साधक हैं आदर्श सूरि पाठक मुनिराज महंत हैं॥
 ध्येयरूप आदर्श सदा निर्मल निज-ज्ञायकभाव है॥

‘रत्नत्रय आदर्श हमारा सदा रहे’ यह भाव है॥6॥

ॐ हर्षि व्यवहारचारित्रस्वरूपप्रकाशक - श्रीनियमसारपरमागमाय
 अनर्थपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा।

(108) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

(दोहा)

मुनि-दीक्षा की भावना, भायें चेतनराज।
अर्पित हैं श्रद्धा-सुमन पाऊँ शिव-साम्राज्य॥7॥
(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

5

॥ परमार्थ-प्रतिक्रमण-अधिकार के लिए अर्घ्य ॥

(रोला)

अकर्तृत्व अनुभूति प्रतिक्रमण है परमारथ।
पंच रत्न से शोभित यह अनुभव शिव-मारग॥
निज निर्दोष स्वभाव सदा परिणति में विलसो।
आहवानन सु-स्थापन सन्निधिकरण सहज हो॥1॥
(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

(हरिगीतिका)

पंच रत्नों से अहो! जिस भव्य ने है इस तरह।
सम्पूर्ण विषयों के ग्रहण की वासना का त्याग कर॥
निज द्रव्य-गुण-पर्याय में निज चित्त को एकाग्र कर।
निज-भाव से जो भिन्न सकल विभाव तज हो मुक्ति-वर॥2॥
भेदज्ञान अभ्यास से मध्यस्थ हो चारित लहे।
चारित्र-दृढ़ता के लिए ही प्रतिक्रमण विधान हो॥
वचन-रचना आदि रागादिक पराश्रय भाव तज।
निःशल्य गुप्त सुध्यानमय मुनिराज ही हैं प्रतिक्रमण॥3॥
प्रत्यक्ष शिवमय सदा जो उस आत्मा में है नहीं-
ध्यानावली किंचित् अहो! यह शुद्धनय कहता यही॥

‘ध्यानावली है आत्मा में’ वचन यह व्यवहार का।
 यह तत्त्व जो जिनवर कथित है इन्द्रजाल अहो महा॥14॥
 ज्ञान-सम्यक् का विभूषण तत्त्व यह परमात्मा।
 है सब विकल्पों से रहित सब ओर से यह आत्मा॥
 इसमें नहीं नयपुंज सम्बन्धी प्रपञ्च जरा अहो।
 ध्यानावली फिर किस तरह उत्पन्न हो सकती कहो॥15॥
 तजकर समस्त विभाव या व्यवहार-रत्नत्रय अहो।
 निज आत्मा को जाननेवाला पुरुष मतिमान जो॥
 शुद्धात्मा में नियत ऐसे एक ही निज-ज्ञान का।
 और फिर श्रद्धान का, आश्रय करे चारित्र का॥16॥
 ॐ ह्रीं परमार्थप्रतिक्रमण-स्वरूपप्रकाशक-नियमसारपरमागमाय
 अनधर्यपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

पूजूँ गुरुवर-आचरण, नित प्रतिक्रमण-स्वरूप।
 अर्पित हैं श्रद्धा-सुमन निरखूँ निज चिट्रूप॥17॥
 (इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

6

॥ निश्चय प्रत्याख्यान-अधिकार के लिए अर्थ ॥

(चान्द्रायण)

सकल प्रब्रज्या के अनुपम साम्राज्य की-
 शोभा विजय-ध्वजा के उन्नत दण्ड की।
 कर्म-निर्जरा हेतु मोक्ष-सोपान है।
 मुक्ति-वधू का दर्शन प्रथम महान है॥11॥

(110) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

(सोरठा)

निज स्वरूप निर्दोष, आहवानन थापन कर्त्ता।
प्रकटे आनन्द कोष, तन्मय मम परिणाम है॥११॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

(वीरछन्द)

जो सुदृष्टि सब कर्म और नोकर्म पुंज परित्याग करे।
सम्यज्ञान मूर्ति उस ज्ञानी को नित प्रत्याख्यान वरे॥
पाप-समूह विनाशक सत्-चारित्र उसे अतिशय होता।
भव-भव के दुख नाश-हेतु मैं नित्य उसे बन्दन करता॥१३॥

निज आत्मिक गुण से समृद्ध निजातम पंचम-भाव स्वरूप।
उसे एक को ही यह आत्मा निज में जानन-देखनरूप॥
पंचम एक स्वभाव सहज को उसने छोड़ा कभी नहीं।
अन्य भाव पुद्गल-विकार जो उन्हें ग्रहण ही करे नहीं॥१४॥

मेरे सहज सुदर्शन में अरु शुद्ध ज्ञान में चारित में।
और शुभाशुभ कर्मद्वन्द्व के पावन प्रत्याख्यान समय॥
संवर में शुद्धोपयोग में एक यही परमात्मा ही।
मुक्ति-प्राप्ति के लिए जगत में कोई अन्य पदार्थ नहीं॥१५॥

भ्रान्ति-नाश से जिनकी बुद्धि सहज परम-चेतन में निष्ठ।
ऐसे शुद्ध चरित्रमूर्ति को होता प्रत्याख्यान विशिष्ट॥
जो योगी हैं अन्य-समय में उन्हें न होता प्रत्याख्यान।
उन संसारी जन को होता पुनः पुनः संसरण महान॥१६॥

ॐ ह्रीं निश्चयप्रत्याख्यान-स्वरूपप्रतिपादक-नियमसारपरमागमाय
अनर्थ्यपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

कलशामृत रसपान कर, निर्मल हों परिणाम।
अर्पित हैं श्रद्धा-सुमन परिणति हो निष्काम॥7॥
(इति पुष्पांजलि क्षिपामि/क्षिपेत्)

7

॥ परम-आलोचना-अधिकार के लिए अर्द्ध ॥

(चान्द्रायण)

आलोचना-परम गुरुवर वर्णन करें।
साम्य-भाव अरु भाव-शुद्धि के रूप में॥
परिणति में अभिनन्दन निर्मल भाव का।
प्रकटाऊँ हे नाथ! ज्ञान-दृग रूप में॥1॥

(दोहा)

अहो! परम आलोचना का मंगल अधिकार।
स्व-संवेदन ज्ञान में, करूँ आज स्वीकार॥2॥

(इति पुष्पांजलि क्षिपामि/क्षिपेत्)

(हरिगीतिका)

जिनवर कथित आलोचना के भेद को जो जानते।
वे भव्य जन सब ओर से पर-भाव को परित्यागते॥
इन सभी को अवलोकते निजरूप को भी जानते।
वे परम-श्रीमय कामिनी के कांतिमय वल्लभ बनें॥3॥
जो संयमी जन को सदा शिवमार्ग-फल देती अहो।
शुद्धात्मा में नियत चर्या के सदा अनुरूप जो॥
ऐसी निरन्तर शुद्धनयमय जो अहो आलोचना।
मुझ संयमी को वास्तव में कामधेनुरूप हो॥4॥

(112) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

ॐ हीं परम-आलोचनास्वरूपप्रकाशक -नियमसारपरमागमाय
अनध्यपदप्राप्तये अर्थं निर्विधानीति स्वाहा।

(दोहा)

श्री जिनभक्ति प्रसाद से, हो भक्ति निर्दोष।
अर्पित हैं श्रद्धा-सुमन पाऊँ अक्षय कोष॥५॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

8

॥शुद्धनिश्चय प्रायश्चित्त-अधिकार के लिए अर्थ॥

(हरिगीतिका)

ब्रत समिति अरु शील संयम करण-निग्रह जिन कहें।
क्रोधादि एवं शुभ-अशुभ से रहित प्रायश्चित कहें॥
निजालंबी भाव से पर-भाव का परिहार हो।
ध्यान हो शुद्धात्मा का यही प्रायश्चित अहो॥१॥

(सोरठा)

प्रायश्चित परिणाम का मैं आहवानन करूँ।
निज में हो विश्राम सुस्थापन सन्निधिकरण॥२॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

(वीरछन्द)

जो स्वद्रव्य का धर्मध्यान अरु शुक्लध्यानमय चिन्तन है।
कर्मजन्य-तम नाश हेतु जो सम्यग्ज्ञान तेज-सम है॥
निर्विकार निज महिमा में ही रहता है जो लीन सदा।
ऐसा प्रायश्चित वास्तव में उत्तम पुरुषों को होता॥३॥

आत्मज्ञान से आत्मलब्धि होती है क्रमशः यमियों को।
ज्ञान-ज्योति से इन्द्रिय-दल के अन्धकार का नाशक जो॥
कर्म-वनों की दावानल की शिखा-जाल शम करने को।
शम-जलमय धारा तेजी से सततरूप बरसाती जो॥14॥

मुनिजन चित्तकमल का वासी, मुक्तिकामिनी रति सुख मूल।
नित्य नमूँ परमात्मतत्त्व को भव-तरु किया विनष्ट समूल॥15॥

कर्मों की अटवी अनादि भव-परम्परा से पुष्ट महान।
उसे जलाने हेतु अग्नि की ज्वाला-सम तप है सुख-खान॥
मुक्ति-वधू को झेंट, चिदानन्द अमृत रस से है भरपूर।
यही कर्म-नाशक प्रायश्चित सन्त कहें नहिं कोई और॥16॥

ॐ हर्षि शुद्धनिश्चयप्रायश्चित्त-स्वरूपस्वरूपप्रकाशक-नियमसार-
परमागमाय अनर्थपदप्राप्तये अर्थं निर्विपामीति स्वाहा।

(दोहा)

निज-निर्मल परिणाम है, निश्चय-प्रायश्चित्त।
चरणों में निष्काम हैं, श्रद्धा-सुमन विशुद्ध॥17॥

(इति पुष्पांजलि क्षिपामि/क्षिपेत्)

9

॥ परम-समाधि-अधिकार के लिए अर्थ ॥

(चान्द्रायण)

परम-समाधि का स्वरूप गुरुवर कहें।
निज-परिणति में सहज समाधि विस्तरें॥
साम्य भाव का अभिनन्दन मैं भी करूँ।
शत्रु-मित्र जग में न किसी को मैं लखूँ॥11॥

(114) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

(दोहा)

परम-समाधि स्वरूप हैं, सामायिक परिणाम।
आहवानन-थापन तथा, सन्निधिकरण विधान॥12॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

(वीरछन्द)

उत्तम आत्माओं के उर में प्रकटरूप यह कोइ परम।
अकथनीय इस परम समाधि द्वारा अनुभव करें न हम॥
जब तक समता की अनुगामी अनुपम आत्मसम्पदा का।
तब तक हम जैसों का हैं जो विषय न अनुभव में आता॥13॥
कोइ अद्वैत मार्ग में सुस्थित द्वैत मार्ग में कोइ रमें।
द्वैत-अद्वैत विमुक्त मार्ग में अहो निरन्तर हम वर्तें॥
इच्छा करते हैं अद्वैत की कोइ द्वैत को ही चाहें।
द्वैत-अद्वैत विमुक्त निजातम को मैं नित प्रति करूँ नमन॥14॥
अहो अजन्मा अविनाशी निज आतम को आतम द्वारा।
आतम में सुस्थित रहकर मैं सुख-वांछक पुनि-पुनि भाता॥
भव-उत्पादक भेद कथन से बस होओ! अब बस हो रे!
अहो! अखण्डानंद आत्मा नय-समूह का अविषय है॥15॥
इसीलिए यह आतम द्वैत-अद्वैत विकल्पों से है दूर।
अल्पकाल में भव-भय-क्षय के लिए उसे मैं नमन करूँ॥16॥
उँ हीं परमसमाधि-स्वरूपस्वरूपप्रकाशक-नियमसारपरमागमाय
अनर्थपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

परम-समाधि स्वरूप का, रस पीते मुनिराज।
अर्पित हैं श्रद्धा-सुमन पाऊँ शिव-साम्राज्य॥17॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

॥ परम-भक्ति-अधिकार के लिए अर्घ्य ॥

(हरिगीतिका)

निज आत्मा का ज्ञान अरु श्रद्धान सम्यक् आचरण।
जिनवर-कथित यह परम-भक्ति करें साधक तपोधन॥
निष्कर्म-वृत्तिमान, भव-भय-भीरु-मुनि त्रय-रत्न की-
भक्ति करें, हम वन्दना करते मुनीश्वर-चरण की॥1॥

(दोहा)

रत्नत्रय ही श्रेष्ठ है, परम-भक्ति परिणाम।
निश्चय-भक्ति का करूँ, परिणति में आह्वान॥2॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

(वीरछन्द)

भव-भयहारी सम्यग्दर्शन शुद्ध ज्ञान अरु चारित्र की।
करें निरन्तर अतुलनीय जो भव-छेदक अनुपम भक्ति॥
कामादिक सब दुष्ट पाप-घन से विमुक्त उसका चित हो।
श्रावक हो अथवा संयमयुत जीव भक्त है भक्त अहो॥3॥
निश्चल महाशुद्ध रत्नत्रय युक्त नित्य शुद्धातम में।
मुक्ति हेतु दृग-ज्ञान-चरितमय निरुपम सहज निजातम में॥
वास्तव में सम्यक् प्रकार से स्थापित करके आतम को।
चेतन चमत्कार भक्ति से प्राप्त निरतिशय निज घर को॥4॥
अपुनर्भव सुख सिद्धि हेतु मैं शुद्धयोग की भक्ति करूँ।
भव-भय से हे जीव! सभी यह उत्तम भक्ति नित्य करो॥5॥
जो जनगण या सुरगण द्वारा हैं परोक्ष-भक्ति के योग्य।
परम श्रेष्ठ हैं अति प्रसिद्ध हैं शिवमय सदा सुसिद्ध मनोज॥

(116) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

सिद्धिरूप रमणी का अति रमणीय मुखकमल जो सुन्दर।
सिद्धप्रभू उसका मकरन्द सुधारस पीते हुए भ्रमर॥16॥
आदिनाथ से महावीर तक तीर्थकर जिनराज हुए।
योग-भक्ति कर इसी विधि से मुक्ति-वधु सुख प्राप्त हुए॥17॥
ॐ ह्रीं परमभक्ति-स्वरूपस्वरूपप्रकाशक-नियमसारपरमागमाय
अनध्यपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

परम-भक्ति सुखरूप का, रस पीते मुनिराज।
अर्पित हैं श्रद्धा-सुमन पाऊँ शिव-साम्राज्य॥18॥
(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

11

॥ निश्चय परमावश्यकाधिकार के लिए अर्थ ॥

(हरिगीतिका)

जिनमार्ग के आचरण में जो कुशल, अन्तर्मुख सदा।
धर्म-ध्यान प्रधान आवश्यक-परम जिनको सदा॥
नहिं अन्यवश, साक्षात् निज-वश उन मुनीश्वर को अहा!
निरन्तर तप-परम में हैं लीन, जिनवर ने कहा॥11॥

(दोहा)

ब्राह्य-क्रिया परपंच से, विमुख सदा वे जीव।
परम-समाधि सुयोगमय, शिवपथ चलें सदीव॥12॥
निश्चय-आवश्यक-परम यह अधिकार महान।
आहवानन सुस्थापना सन्निधिकरण विधान॥13॥
(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

(वीरछन्द)

इस असार संसारोदधि में पापपूर्ण कलिकाल विलास।
 अतः अनघ जिननाथ-मार्ग में नहीं दृष्टिगत मुक्ति-विलास॥
 इसीलिए कैसे हो सकता वर्तमान में आत्म-सुध्यान।
 भवभयहारी निज-श्रद्धा स्वीकृत करते निर्मल मतिमान॥14॥
 भव-कारण थावर त्रस आदिक जीवों के हैं भेद अनेक।
 सदा जन्म उत्पन्न करें जो कर्मों के भी भेद अनेक॥
 निर्मल जिनशासन में लब्धि भी प्रसिद्ध बहु-भेद कही।
 अतः स्व-पर मतिवालों से है वचन विवाद नहीं करणीय॥15॥
 ज्यों लौकिक जन-धन पाकर पर-संग तजें अरु गुप्त रहें।
 इस प्रकार ज्ञानीजन भी निज ज्ञान-निधि रक्षण करते॥16॥
 जन्म-मरण रोगों का कारणभूत सकल पर-संग तजें।
 हृदय-कमल में बुद्धिपूर्वक पूर्ण विरक्ति भाव धरें॥
 सहज परम आनन्द निराकुल निज में थिर पुरुषार्थ करें।
 मोह क्षीण होने पर जग को नित हम तृण-समान निरखें॥17॥
 वीतराग सर्वज्ञ और निज-वश योगी में किंचित् भी।
 भेद नहीं है किन्तु अरे रे! हम जड़ मानें भेद सही॥18॥
 स्व-वश महामुनि इस भव में हैं सदा एक ही धन्य अहो।
 जो अनन्य मतिवाले रहते हुए कर्म से बाहर हों॥19॥
 ॐ हर्षि निश्चयपरम-आवश्यकप्रकाशक - नियमसारपरमागमाय
 अनर्थपदप्राप्तये महाऽर्थ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

परमावश्यक कर्म से, हुए मुनि निष्कर्म।
 महा-अर्थ्य अर्पित प्रभो, लहूँ अनर्थ्य सुशर्म॥10॥
 (इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

॥ शुद्धोपयोग-अधिकार के लिए अर्थ ॥

(कुण्डलिया)

स्व-पर प्रकाशक ज्ञान अरु दर्शन कहें मुनीन्द्र।

स्व-पर प्रकाशक आत्मा दिखला रहे जिनेन्द्र॥

दिखला रहे जिनेन्द्र विश्व को नित्य निरखते।

इच्छा बिन उपदेश करें अरु विचरण करते॥

किन्तु अबन्धक रहें जिनेश्वर हैं निर्वाण्ठक।

यह महान शुद्धोपयोग है स्व-पर प्रकाशक॥1॥

(दोहा)

प्रभो! शुद्ध उपयोगमय, निज स्वरूप का ज्ञान।

आह्वानन सुस्थापना, सन्निधिकरण विधान॥2॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्।)

(वीरछन्द)

एक सहज निज परमात्मा को करे प्रकाशित ज्ञान-प्रकाश।

और त्रिलोक अलोक निवासी ज्ञेयों को भी करे प्रकाश॥

नित्य शुद्ध ऐसा क्षायिक दर्शन भी स्व-पर प्रकाशक है।

इनके द्वारा आत्मदेव भी निज-पर ज्ञेय प्रकाशक है॥3॥

नहीं सर्वथा ज्ञान आत्मा नहीं सर्वथा दर्शन है।

उभय स्वरूपी स्व-पर विषय को जाने और देखता है॥

आत्मा और ज्ञान-दर्शन में संज्ञादिक का भेद सही।

अग्नि और ऊर्णता तुल्य इनमें वास्तव में भेद नहीं॥4॥

यह तृतीय सर्वोत्तम चक्षु जिसका केवलज्ञान सुनाम।

जिससे जग ने महिमा जानी ऐसे तीर्थनाथ भगवान॥

लोकालोक अचेतन-चेतन निज-पर को सम्यक् जानें।

जो हैं त्रिभुवन के गुरु उनका है अनन्त शाश्वत निज धाम॥15॥

बन्ध-छेद होने से एवं नित्य शुद्ध ऐसे भगवान।

सिद्ध प्रसिद्ध प्रभू में है अत्यन्तपने यह केवलज्ञान॥

सब कुछ जिसका विषय अहो! वह साक्षात् दर्शन होता।

सुख अनन्त अरु शुद्ध शुद्ध वीर्यादि पुंज-गुणमणि होता॥16॥

जिनमत सम्मत मुक्ति में अरु मुक्त जीव में भेद नहीं।

युक्ति से अथवा आगम से भेद न जानें हम कुछ भी॥

और लोक में कोइ भव्य-जन सकल कर्म निर्मूल करे।

तो वह परम श्रीरूपी कामिनी का प्रियतम वल्लभ हो॥17॥

ॐ हर्षं शुद्धोपयोगस्वरूप-प्रकाशक-नियमसारपरमागमाय अनर्थ-
पदप्राप्तये अर्थं निर्वापामीति स्वाहा।

(दोहा)

चरण-कमल जिनराज के, उर में बसे सदैव।

भक्ति-अर्थ अर्पित प्रभो! ध्याऊँ निज ध्रुव एक॥18॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

महार्थ

(दोहा)

दर्शन-ज्ञान-चरित्र ही, एक मात्र शिव-पन्थ।

मंगलमय संदेश है, नियमसार निर्गन्थ॥11॥

(मरहठा माधवी)

आप्त और आगम का वर्णन करते सुगुरु महान हैं।

दर्श-ज्ञान उपयोग जीव की एक मात्र पहचान हैं॥

पुद्गल धर्माधर्म काल नभ हैं अजीव अधिकार में।

छह द्रव्यों की रत्नमाल हो भविजन के श्रद्धान में॥12॥

(120) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

जीवादिक सब बाह्य तत्त्व हैं उपादेय निज आत्मा।
क्षणवर्ती सब पर्यायों से भिन्न सदा शुद्धात्मा॥।
पंच महाब्रत समिति गुप्ति का कथन चरित-व्यवहार में।
आत्मा ही उत्तम पदार्थ कहता प्रतिक्रम परमार्थ है॥13॥

निज आत्मा का ध्यान मात्र ही निश्चय प्रत्याख्यान है।
निष्कषाय समभावरूप में आलोचन-व्याख्यान है॥।
आत्मज्ञान तप ध्यान नियम को निश्चय प्रायश्चित्त जानें।
धर्म-शुक्ल द्वय ध्यानों को स्थायी सामायिक मानें॥14॥

वीतरागमय निश्चय-भक्ति योग-भक्ति अधिकार में।
निज-वश पर-वश मुनि स्वरूप परमावश्यक अधिकार में॥।
स्व-पर प्रकाशक दर्श-ज्ञानमय शुध उपयोग स्वरूप है।
नमन मुनीश्वर कुन्दकुन्द को नियमसार चिद्रूप है॥15॥

(दोहा)

कुन्दकुन्द मुनि-पद्म के, वन्दू पद-अरविन्द।
महा-अर्द्ध अर्पित करूँ, ध्याऊँ सदा जिनेन्द्र॥16॥

ॐ ह्रीं रत्नत्रयस्वरूप-प्रकाशक-नियमसारपरमागमाय अनर्द्धपदप्राप्तये
समुच्चयमहाऽर्द्धं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

कुन्दकुन्द के हार्द को, खोलें टीकाकार।
मंगलमय जयमाल में, लिखूँ इसी का सार॥11॥

(वीरछन्द)

पूर्वापर दोषों के कारण मोह-राग-रुष से परिमुक्त-
आप्त-पुरुष के वदन-कमल से हुआ प्रसारित दोष-विमुक्त-

जिनवर का उपदेश, अवंचक गुरु-प्रसाद से प्राप्त किया।
 निज-भावना निमित ही मैंने नियमसार यह शास्त्र रचा॥12॥

शत-शत परमाध्यात्म शास्त्र में हुई कुशलता मुझको प्राप्त।
 हुआ अहो! यह ग्रन्थ पूर्ण इसलिए हुआ अत्यन्त कृतार्थ।
 सर्वागम के अर्थों के प्रतिपादन में यह ग्रन्थ समर्थ।
 सम्यक् शिवपथ दरशाया है, यह ही नियम शब्द का अर्थ॥13॥

पंचाचार प्रपञ्च सुशोभित गर्भित द्रव्य तत्त्व-पद अर्थ।
 पंच भाव विस्तार परायण निश्चय प्रत्याख्यान समृद्ध।
 प्रतिक्रमण प्रायश्चित आलोचन व्युत्सर्ग नियम-परमार्थ।
 त्रय उपयोग सुशोभित एवं सूत्र और आगम तात्पर्य॥14॥

सूत्रों का तात्पर्य बताया है प्रति गाथा के अनुसार।
 सुनो! शास्त्र तात्पर्य भव्यजन अब इस टीका के अनुसार॥
 वीतराग निर्बाध निरन्तर परमानन्द अनंग स्वरूप।
 मुक्ति-सुन्दरी से उत्पन्न सुखद यह भगवत शास्त्र अनूप॥15॥

नित्य-निरंजन-निज कारण परमात्म-भावना हो उत्पन्न।
 पंचेन्द्रिय-विस्तार रहित तन मात्र परिग्रहवन्त रचित॥
 नय-द्रव्य के अविरोध रहित इस शास्त्र-भागवत के ज्ञाता।
 वे होते हैं शब्द-ब्रह्म के फल शाश्वत सुख के भोक्ता॥16॥

(दोहा)

वीर-कुन्द मुनि-पद्म को, वन्दू बारम्बार।
 नियमसार इस ग्रन्थ का, भाव हृदय में धार॥17॥

दर्शन ज्ञान चरित्रमय, प्रकटे शिवपुर पन्थ।
 अर्द्ध समर्पित हे प्रभो! नमो नमो निर्ग्रन्थ॥18॥

ॐ ह्रीं शुद्धोपयोगस्वरूप-प्रकाशक-नियमसारपरमागमाय अनर्घ्यपद-
 प्राप्तये समुच्चय-जयमालापूर्णाऽर्द्धं निर्वपामीति स्वाहा।

(122) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

(वीरछन्द)

निर्ग्रन्थों के पथ की भक्तिभाव पूर्वक रचा विधान।
हे प्रभु! चिदानन्द के अनुभव से विभाव का हो अवसान॥
लक्ष्य सदा हो निज स्वभाव का परिणति में रत्नत्रय हो।
भेदज्ञान से चिर समाधि हो अब प्रभु! पुनर्जन्म ना हो॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

॥ अन्तिम प्रशस्ति ॥

(दोहा)

धन्य जिनेश्वर देव हैं, धन्य गुरु निर्ग्रन्थ।
जिनकी वाणी में बसे, स्वानुभूति शिवपन्थ॥1॥
भक्तिभाव पूर्वक रचा, नियमसार सुविधान।
व्यय हो पूर्ण विकार का, निर्मल हों परिणाम॥2॥
दो सहस्र सतरह वरष, शुभ नौ दिन अप्रैल।
वीर-जन्म-कल्याण दिन, पूर्ण विधान सुमेल॥3॥
स्वर व्यंजन मात्रादि या भावों की हो भूल।
ध्यानाकर्षित बुध करें, हो सुधार अनुकूल॥4॥
यथा अकर्ता हैं गुरु अमृतचन्द्राचार्य।
मुझमें भी कर्तृत्व का, लेश न होय विकार॥5॥
इस रचना के काल में, ज्ञात और अज्ञात।
हुए सभी अपराध जो, क्षमा करें जिनराज॥6॥
पंच प्रभू जयवन्त हों, जिनशासन जयवन्त।
श्रीजिन-चरण-प्रसाद से, हो विकल्प का अन्त॥7॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

(इसके पश्चात् पृष्ठ 237-238 पर दिए गए महार्घ्य एवं शान्ति पाठ पढ़ें।)

परिक्रमा गीत

यह नियमसार निर्गन्थ, सन्त का पन्थ परम सुखदाता।
यह ही कर्तव्य हमारा॥ टेक॥

यह सम्यग्ज्ञान प्रकाश करे, सम्यकचारित्र विकास करे।
यह कारण-कार्य नियम का ज्ञान कराता॥

यह शुद्ध भाव दिखलाता है, जो उपादेय बतलाता है।
चारों सापेक्ष भाव से मिल बताता॥

व्यवहारचरित्र कहा इसमें, परमार्थ प्रतिक्रमण भी इसमें।
निश्चय आवश्यक, परम भक्ति दिखलाता॥

आलोचन, प्रत्याख्यान कहे, सामायिक परम समाधि कहे।
शुद्धोपयोग अधिकार मुक्ति दिखलाता॥

यह ही कर्तव्य हमारा...।

(124) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

श्री पंचास्तिकाय संग्रह परमागम विधान

(यह विधान करने से पूर्व समय की अनुकूलता के अनुसार आचार्य कुन्दकुन्द पूजन, आचार्य अमृतचन्द्र पूजन एवं आचार्य जयसेन पूजन का आनंद अवश्य लेवें।)

पीठिका

(हरिगीतिका)

पंचास्तिकाय विधान की रचना करूँ प्रभु-भक्ति से।
सार इसका ग्रहण कर परिणमन हो निज शक्ति से॥
रागादि के परिहार से हो ग्रहण निज शुद्धात्म का।
जो है अनादि-अनन्त चिन्मय पिण्ड है आनन्द का॥1॥
गम्भीर मनमोहक मधुर निर्दोष हितकर वचन जो।
उच्छ्वास के अवरोध या कण्ठादि से अनुत्पन्न जो॥
अभीष्ट वस्तुस्वरूप का सु-स्पष्ट करते कथन जो।
वे जिन-वचन रक्षा करें सब प्राणियों को सुलभ जो॥2॥
प्राणियों का मोह-तम क्षणमात्र में विघटित करे।
हिताहित का ज्ञान अरु मध्यस्थता सब में करे॥
दृष्टि एवं आचरण हों श्रेष्ठ जिनके ज्ञान से।
आचार्यवर का ज्ञान मेरे चित्त को प्रमुदित करे॥3॥
अब वीतराग महाश्रमण-गत शब्द-समय श्रवण करूँ।
तद्-वाच्य अर्थात्मक समय का निर्विकल्पक स्वाद लूँ॥
निराकुल निर्वाण सुख निज आत्म से उत्पन्न हो।
हे नाथ! द्रव्यागम-समय को सुमन से मम नमन हो॥4॥

(दोहा)

जिनवर-जिनश्रुत-जिनगुरु के प्रसाद से आज।
परिणति में निर्ग्रन्थ हो पाऊँ सिद्ध समाज॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्।)

श्री पंचास्तिकाय संग्रह परमागम पूजन

स्थापना

(हरिगीतिका)

तीर्थकर्ता वीर, गुरु गौतम चरण-युग उर धरूँ।
मुनि कुन्द-अमृतचन्द्र कृत रचना सुमति-श्रुत में धरूँ॥।
षट् द्रव्य और पदार्थ नव शिवपन्थ की श्रद्धा करूँ।
पंचास्तिकाय महान श्रुत की भाव से पूजा करूँ॥1॥

पंच परमागम रचे हैं कुन्दकुन्दाचार्य ने।
त्रय-ग्रन्थ की गम्भीर टीका रची अमृतचन्द्र ने॥।
तात्पर्यवृत्ति सरल टीका रची गुरु जयसेन ने।
जो भव्यजन को तत्त्व-निर्णय में निमित, गुरुवर कहें॥2॥

तत्त्वार्थ का श्रद्धान ही सम्यक्त्व श्री जिनवर कहें॥।
श्रद्धान हेतु तत्त्व-निर्णय ही प्रथम कर्तव्य है॥।
तत्त्व-निर्णय के लिए ही ग्रन्थ हैं निर्ग्रन्थ के।
अतएव हम निज-ज्ञान में जिन-सूत्र आहवानन करें॥3॥

(दोहा)

सम्यक् निर्णय तत्त्व का वर्ते श्रुत-श्रद्धान।
पूजूँ मन-वच-काय से श्रुत-पंचास्ति महान॥4॥

ॐ हीं षट्द्रव्य-नवपदार्थ-मोक्षमार्गप्रतिपादक-पंचास्तिकायपरमागम!
अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याहवानम्।

ॐ हीं षट्द्रव्य-नवपदार्थ-मोक्षमार्गप्रतिपादक-पंचास्तिकायपरमागम!
अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।

ॐ हीं षट्द्रव्य-नवपदार्थ-मोक्षमार्गप्रतिपादक-पंचास्तिकायपरमागम!
अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(126) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

अष्टक

(चौपई : रोम-रोम पुलकित हो जाय...)

तत्त्वज्ञानमय निर्मल नीर चिर मिथ्यामल हो प्रक्षीण।

पूजूँ श्रुत-पंचास्तिकाय जन्म-जरा-मृतु शीघ्र विलाय॥

ॐ हीं षट्द्रव्य-नवपदार्थ-मोक्षमार्गप्रतिपादक-पंचास्तिकायपरमागमाय
जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक् श्रुत का हो अभ्यास चित् में शीतलता का वास।

पूजूँ श्रुत-पंचास्तिकाय भव-आताप तुरत नश जाय॥

ॐ हीं षट्द्रव्य-नवपदार्थ-मोक्षमार्गप्रतिपादक-पंचास्तिकायपरमागमाय
संसारताप-विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

निरखूँ निज अखंड ध्रुवज्ञान संग में हो अक्षत श्रद्धान।

पूजूँ श्रुत-पंचास्तिकाय क्षत-विक्षत परभाव विलाय॥

ॐ हीं षट्द्रव्य-नवपदार्थ-मोक्षमार्गप्रतिपादक-पंचास्तिकायपरमागमाय
अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

अष्टांगी प्रकटे श्रुतज्ञान महके गुण-अनन्त उद्यान।

पूजूँ श्रुत-पंचास्तिकाय काम-कलंक तुरत विनशाय॥

ॐ हीं षट्द्रव्य-नवपदार्थ-मोक्षमार्गप्रतिपादक-पंचास्तिकायपरमागमाय
कामबाण-विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

निज चैतन्य-स्वाद से तृप्त परिणति ज्ञायक में अनुरक्त।

पूजूँ श्रुत-पंचास्तिकाय स्वानुभूति-रस क्षुधा नशाय॥

ॐ हीं षट्द्रव्य-नवपदार्थ-मोक्षमार्गप्रतिपादक-पंचास्तिकायपरमागमाय
क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वाध्याय की ज्योति महान निज को निज पर को पर जान।

पूजूँ श्रुत-पंचास्तिकाय मति-श्रुत में ज्ञायक विलसाय॥

ॐ हीं षट्द्रव्य-नवपदार्थ-मोक्षमार्गप्रतिपादक-पंचास्तिकायपरमागमाय
मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रुत-समीर से प्रजलित ध्यान कर्मन्धन का हो अवसान।

पूजूँ श्रुत-पंचास्तिकाय ध्यान-ध्येय हों एकाकार॥

ॐ हीं षट्द्रव्य-नवपदार्थ-मोक्षमार्गप्रतिपादक-पंचास्तिकायपरमागमाय
अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

भेदज्ञान तरु फले महान शिवफल दाता है श्रुतज्ञान।

पूजूँ श्रुत-पंचास्तिकाय क्षायिक-भाव सुफल प्रकटाय॥

ॐ हीं षट्द्रव्य-नवपदार्थ-मोक्षमार्गप्रतिपादक-पंचास्तिकायपरमागमाय
मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

निज-निधि दरशायक श्रुतज्ञान पद अनर्थ दाता गुणखान।

पूजूँ श्रुत-पंचास्तिकाय हो अनर्थ शिवपद सुखदाय॥

ॐ हीं षट्द्रव्य-नवपदार्थ-मोक्षमार्गप्रतिपादक-पंचास्तिकायपरमागमाय
अनर्थपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थावलि

(1)

॥ षट् द्रव्य निस्त्रपक प्रथम महाधिकार ॥

(पीठिका)

(हरिगीतिका)

एक शत अरु चार गाथा इस प्रथम अधिकार में।

पीठिका में समय की व्याख्या रखी आचार्य ने॥

पंच अस्तिकाय एवं काल का वर्णन किया।

अन्तराधिकार आठों में कथन पूरा किया॥

इस शास्त्र में प्रतिपाद्य निज शुद्धात्मा को जानकर।

निज ज्ञानज्योति प्रकट कर दृग् मोह का प्रक्षाल कर॥

फिर राग-द्वेष विनष्ट होवें बन्ध भी होवे विलय।

चैतन्य प्रतपन हो स्वयं में उछलती सुख की लहर॥

(128) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

(दोहा)

पूजा फल इस शास्त्र का प्रकटे शिवपुर पन्थ।
भक्ति-सुमन अर्पित करूँ, निरखूँ पद निर्ग्रन्थ॥
(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत् ।)

॥ 1 ॥

समय प्रतिपादक प्रथम अन्तराधिकार के लिए अर्ध्य
(गाथा 1 से 7 के आधार से)

(दोहा)

पाँचों अस्तिकाय का समय कहें समुदाय।
इनमें मैं चिद्रूप हूँ सार समय सुखदाय।
(रोला)

शब्द अर्थ अरु ज्ञान समय जिनवर बतलाते।
पाँचों अस्तिकाय, काल भी द्रव्य बताते।
तन-मन्दिर में शुद्ध जीव परमात्मा राजे।
यही समय का सार ग्राह्य हम अर्ध्य चढ़ाते॥

ॐ ह्रीं समयशब्दार्थप्रतिपादक-पंचास्तिकायपरमागमाय अर्ध्य
निर्वपामीति स्वाहा।

॥ 2 ॥

सामान्य द्रव्य प्रतिपादक अन्तराधिकार के लिए अर्ध्य
(गाथा 8 से 21 के आधार से)

(दोहा-रोला)

व्यय-उत्पाद-रु ध्रौव्यमय है सत्ता का रूप।
गुण-पर्यय विलसें सदा भिन्न-अभिन्न स्वरूप॥

अनेकान्तमय सत्ता को ही द्रव्य कहा है।
 द्रव्य कथंचित् नित्यानित्य कहे जिनवाणी॥
 सत् भी शाश्वत और विनाशी कहा गया है।
 अर्द्ध समर्पित जिनवाणी को शिवसुखदानी॥

ॐ ह्रीं सामान्यद्रव्य-प्रतिपादक-पंचास्तिकायपरमागमाय अर्द्धं
 निर्वपामीति स्वाहा।

॥ 3 ॥

काल द्रव्य प्रतिपादक अन्तराधिकार के लिए अर्द्ध
 (गाथा 22 से 26 के आधार से)

(दोहा-रोला)

दुर्लभ है चिरकाल से शुद्ध जीव चिद्रूप।
 परिणति निज में लीन हो यही स्वकाल स्वरूप॥
 एक प्रदेशी किन्तु काल सत् द्रव्यरूप है।
 द्रव्यों के परिवर्तन से जो जाना जाता॥
 समय निमिष व्यवहार काल तो पर-आश्रित है।
 सभी कार्य होते स्वकाल में यह निश्चित है॥

ॐ ह्रीं कालद्रव्य-प्रतिपादक-पंचास्तिकायपरमागमाय अर्द्धं
 निर्वपामीति स्वाहा।

॥ 4 ॥

॥ जीव के नौ अधिकार प्रस्तुपक चतुर्थ अन्तराधिकार के
 लिए अर्द्ध

(गाथा 27 से 39 के आधार से)
 (दोहा-रोला)

कहते नौ अधिकार से जिनवर जीव स्वरूप।
 प्रभो! शुद्धनय से लख्य मैं चेतन चिद्रूप॥

(130) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

प्रभुता, देह-प्रमाण चेतना मूर्त-रहित है।
कर्ता भोक्ता और कर्म संयुक्तपना है॥
यह उपयोगमयी जीवत्व शक्ति का धारी।
कहते हैं आचार्य जिनागम के अनुसारी॥
ॐ ह्रीं नवप्रकार-जीवस्वरूपप्रतिपादक-पंचास्तिकायपरमागमाय
अनर्थ्यपदप्राप्तये अर्थ्य निर्वपामीति स्वाहा।

॥ 5 ॥

उपयोग अन्तराधिकार के लिए अर्थ्य
(गाथा 40 से 52 के आधार से)

(दोहा-रोला)

दर्शन ज्ञान स्वरूप मैं हूँ सामान्य विशेष।
मुझमें रहें अनन्य ये कहते बीर जिनेश॥
दर्श-ज्ञान चौ आठ भेद उपयोगरूप हैं।
चेतन का व्यापार जीव का निजस्वरूप है॥
केवल-दर्शन-ज्ञान निराकुल सुख के कारण।
अल्प पराश्रित ज्ञान करूँ चरणों में अर्पण॥
ॐ ह्रीं उपयोगभेदप्रकाशक-पंचास्तिकायपरमागमाय अनर्थ्यपदप्राप्तये
अर्थ्य निर्वपामीति स्वाहा।

॥ 6 ॥

कर्ता-भोक्ता एवं कर्मसंयुक्त अधिकार लिए अर्थ्य
(गाथा 53 से 79 के आधार से)

(दोहा-रोला)

निज भावों को ही करें - भोगें सभी पदार्थ।
द्रव्यदृष्टि से मैं सदा निष्क्रिय हूँ परमार्थ॥

निज परिणामों में व्यापक जो हो वह कर्ता।
 और शुभाशुभ-शुद्ध भाव सुख-दुख का भोक्ता॥
 है अनादि से कर्म-देह संग भव में प्रभुता।
 यह सब है व्यवहार कथन निश्चय से, ज्ञाता।
 ॐ ह्रीं कर्ता-भोक्ता-कर्मसंयुक्तस्वरूप-प्रतिपादकपंचास्तिकाय-
 परमागमाय अनर्थपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ 7 ॥

पुद्गल द्रव्य निरूपक अन्तराधिकार के लिए अर्थ
(गाथा 80 से 89 के आधार से)

(दोहा-रोला)

चार भेद वर्णन करें गुरुवर पुद्गल काय।
 उपादेय चैतन्यमय है जीवास्तिकाय।।
 परमाणू स्कन्ध भेद दो हैं पुद्गल के।
 स्कन्धों के भेद बताये छह जिनवर ने॥।।
 एक प्रदेशी की गति से हो काल निरूपण।।
 निज को पर से भिन्न जानना यही प्रयोजन॥।।
 ॐ ह्रीं पुद्गलस्वरूप-प्रतिपादकपंचास्तिकायपरमागमाय अनर्थपद-
 प्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा।।

॥ 8 ॥

धर्मास्तिकायादि चार द्रव्य निरूपक अन्तराधिकार के लिए अर्थ
(गाथा 90 से 104 के आधार से)

(दोहा-रोला)

धर्माधर्मकाश अरु काल अचित्त अरूप।।
 गति-स्थिति-अवगाह अरु वर्तन में सु-निमित्त॥।।

(132) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

उदासीन ये चारों द्रव्य निमित्त कहे हैं।
उपादान तो सभी द्रव्य की निज शक्ति है॥
लोकालोक विभाग करें ये धर्म-अधर्म।
इन सबका परिज्ञान मात्र है चेतन-धर्म॥
ॐ हीं धर्मास्तिकायादिचतुर्द्रव्यनिरूपक-प्रतिपादकपंचास्तिकाय-
परमागमाय अनर्थपद-प्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ 9 ॥

द्रव्यों के विशेष भेद एवं काल द्रव्य निरूपक तथा प्रथम
महाधिकार उपसंहारक प्रथम अधिकार के लिए अर्थ
(गाथा 105 से 111 के आधार से)

(दोहा)

सम्यग्दर्शन-ज्ञान अरु चरण मुक्ति का पन्थ।
निश्चय अरु व्यवहार से कथन करें निर्गन्थ॥

(मरहठा माधवी)

नव पदार्थ की श्रद्धा समकित अधिगम सम्यग्ज्ञान है।
मोह राग रूष रहित साम्य परिणति चारित्र महान है॥
साधन-साध्य भाव से वर्णन उभयरूप शिवपन्थ का।
नव तत्त्वों की श्रद्धा एवं ज्ञान कहा व्यवहार है॥
ॐ हीं व्यवहारमोक्षमार्गप्रस्तुपक परमागम-महाधिकारसमन्वित-
पंचास्तिकायपरमागमाय अनर्थपद-प्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ प्रथम महा अधिकार के लिए महार्थ ॥

(हरिगीतिका)

मूर्त और अमूर्त निष्क्रिय और सक्रिय भेद से।
निज-पर प्रकाशक चेतना या जड़पने के भेद से॥

चूलिका में किया वर्णन श्री गुरु जयसेन ने।
 शुद्धात्मा ही ग्राह्य कहते सूरिवर भावार्थ में॥
 पंचास्तिकायों को समझ आश्रय करे जीवास्ति का।
 रागादि के परित्याग से हो पात्र चेतन, मुक्ति का॥
 श्रुतज्ञान के वलज्ञानवत् है जानने की अपेक्षा।
 अतएव श्रुत में हे गुरो! कैवल्य को मैं देखता॥

(दोहा)

हुआ पूर्ण अधिकार यह पहला श्रुतस्कन्ध।
 महा अर्ध्य अर्पित करूँ लखूँ स्वरूप अबन्ध॥
 ॐ ह्रीं श्री षट्द्रव्यप्ररूपक-प्रथमश्रुतस्कन्धसमन्वित-पंचास्तिकाय-
 परमागमाय अनर्धपदप्राप्तये महार्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

(2)

॥ नव पदार्थ अधिकार ॥

पीठिका

(हरिगीतिका)

प्रथम श्रुतस्कन्ध में षट्द्रव्य का वर्णन किया।
 सुबुध पुरुषों के लिए उपदेश है शुद्धात्म का॥
 नव पदार्थों का कथन अब करें इस अधिकार में।
 श्रद्धा सुमन अर्पित करें हम क्यों भ्रमें संसार में॥

(दोहा)

नव तत्त्वों में व्याप्त है चेतन ज्योति अखण्ड।
 दर्शन-ज्ञान-चरित्र में वर्ते बस चैतन्य॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत् ।)

(134) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

॥ १ ॥

जीव पदार्थ निरूपक प्रथम अन्तराधिकार के लिए अर्द्ध
(गाथा 112 से 130 के आधार से)

(दोहा)

नव पदार्थ वर्णन करें करुणानिधि आचार्य।

भक्ति-सुमन अर्पित करूँ लय हों सभी विकार॥

(मरहठा माधवी)

लक्षण है उपयोग जीव का संसारी या सिद्ध हो।

कहता नय-व्यवहार जीव त्रस थावर चौ गतिरूप हो॥

गुण-मार्गणास्थान राग हों, चेतन की कल्लोल में।

पद अनर्द्ध मैं पाऊँ जिनवर! भेदज्ञान के मन्त्र से॥

ॐ ह्रीं जीवपदार्थप्रस्तुपक पंचास्तिकायपरमागमाय अनर्द्धपद-प्राप्तये
अर्द्ध निर्वपामीति स्वाहा।

॥ २ ॥

अजीव तत्त्व निरूपक द्वितीय अन्तराधिकार के लिए अर्द्ध
(गाथा 131 से 135 के आधार से)

(दोहा)

मूल द्रव्य दो जगत मैं जीव-अजीव सु-द्रव्य।

इनके ही संयोग से सप्त तत्त्व उत्पन्न॥

(मरहठा माधवी)

वस्तु कथंचित् परिणामी है और कथंचित् शाश्वत।

नहीं सर्वथा परिणामी अरु नहीं सर्वथा शाश्वत॥

जड़-चेतन के संयोगों से सात तत्त्व उत्पन्न हों।

हेय-ग्राह्य का ज्ञान कराने गुरुवर करुणावन्त हों॥

श्री पंचास्तिकाय संग्रह परमागम विधान (135)

ॐ हीं अजीवपदार्थप्रसूपक पंचास्तिकायपरमागमाय अनर्घ्यपद-प्राप्तये
अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ 3 ॥

रागादि स्वरूप निरूपक तृतीय अंतराधिकार के लिए अर्घ्य
(गाथा 136 से 138 के आधार से)

(दोहा)

पुण्यरूप शुभभाव है अशुभभाव है पाप।
पुद्गल इनके निमित्त से कर्मपने को प्राप्त॥

(मरहठा माधवी)

द्रव्य पुण्य अरु पाप कर्म का होता उदय निमित्त है।
जीव करे शुभ-अशुभ भाव को यह अशुद्ध-निश्चय कहे॥
द्रव्य-भावमय पुण्य-पाप सब मोक्षमार्ग में हेय है।
इनसे भिन्न शुद्ध आतम जो शुद्ध बुद्ध वह ग्राह्य है॥
ॐ हीं पुण्य-पापस्वरूपप्रसूपक पंचास्तिकायपरमागमाय अनर्घ्यपद-
प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ 4 ॥

पुण्य-पाप स्वरूप निरूपक चतुर्थ अंतराधिकार के लिए अर्घ्य
(गाथा 139-148 के आधार से)

(दोहा)

अनुकम्पा शुभ राग अरु नहीं कलुष परिणाम।
इन भावों के निमित्त से पुण्य आस्तव जान॥

(मरहठा माधवी)

पंच परम गुरु की भक्ति का भाव प्रशस्त स्वरूप है।
दुखी जनों को देख दुखी मन अनुकम्पा का रूप है॥

(136) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

बहु प्रमाद चर्या, कषाय पर-पीड़ा विषय-विमूढ़ता।

दुरुपयोगयुत ज्ञान-मोह से पापास्त्रव जिनने कहा॥

ॐ ह्रीं पुण्य-पापस्वरूपप्रसूपक पंचास्तिकायपरमागमाय अनर्थपद-
प्राप्तये अर्थ्य निर्वपामीति स्वाहा।

॥ 5 ॥

संवर-निर्जरा स्वरूप निरूपक पंचम एवं षष्ठ अन्तराधिकार
के लिए अर्थ्य

(गाथा 149 से 154 के आधार से)

(दोहा)

संयम परम-उपेक्षा निज-अनुभूति स्वरूप।

संवर पूर्वक निर्जरा राग रहित तपरूप॥

(मरहठा माधवी)

कर्म शुभाशुभ आस्त्रव एवं नहिं रागादि विभाव है।

परद्रव्यों एवं सुख-दुख में भिक्षु को सम-भाव है॥

बाह्यान्तर तप से वृद्धिंगत होता शुध-उपयोग है।

आत्मध्यान से हुई निर्जरा निजानन्द निधि भोग है॥

ॐ ह्रीं संवर-निर्जरास्वरूपप्रसूपक पंचास्तिकायपरमागमाय अनर्थपद-
प्राप्तये अर्थ्य निर्वपामीति स्वाहा।

॥ 6 ॥

बन्ध एवं मोक्ष पदार्थ निरूपक सप्तम एवं अष्टम
अन्तराधिकार के लिए अर्थ्य

(गाथा 155 से 157 के आधार से)

(दोहा)

रागी जीव बँधे सदा वीतराग हों मुक्त।

द्वादशांग का सार यह कहते श्री जिन आप्त॥

श्री पंचास्तिकाय संग्रह परमागम विधान (137)

(मरहठा माधवी)

अन्तरंग कारण बन्धन के मोह राग अरु द्वेष हैं।
बाह्यरूप हैं द्रव्यरूप मिथ्यात्व असंयम योग हैं॥
निर्विकल्प अनुभूति लक्षण निज समाधि से साध्य है।
द्रव्य-भाव परमाणू ध्याकर भव्यों को जो साध्य है॥
ॐ हीं बन्ध-मोक्षस्वरूपप्रसूपक पंचास्तिकायपरमागमाय अनध्यपद-
प्राप्तये अर्ध्यं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ द्वितीय महाधिकार के लिए महार्घ्य ॥

(हरिगीतिका)

नव तत्त्व का करके निरूपण मुक्ति का मारग कहा।
किन्तु यह भी पराश्रित व्यवहार भेद बता दिया॥
क्योंकि पुद्गल-योग से ये भेद नौ उत्पन्न हों।
ज्ञानियों को एकमात्र अभेद ही अनुभूति हो॥
ज्ञान अरु चारित्र का भी कथन हो व्यवहार से।
शास्त्र आश्रित ज्ञान अरु ब्रत शील संयम काय से॥
इन्हें मुक्तिमार्ग कहना मात्र यह व्यवहार है।
आत्माश्रित ज्ञान चारित मुक्तिपथ परमार्थ है॥

(दोहा)

अभूतार्थ व्यवहार है प्रथम भूमि में ग्राह्य।
नहीं मुक्ति का पन्थ यह उपादेय परमार्थ॥
प्रतिपादक परमार्थ का स्वयं नहीं परमार्थ।
अतः गौण करके इसे भव्य लहें निज अर्थ॥
ॐ हीं बन्ध-मोक्षस्वरूपप्रसूपक पंचास्तिकायपरमागमाय अनध्यपद-
प्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(138) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

3

॥ मोक्षमार्ग-प्रपञ्च सूचक चूलिका के लिए अध्य॑॥

(गाथा 158 से 181 के आधार से)

(दोहा)

इस तीजे अधिकार में, गाथा हैं चौबीस।

वर्णन है शिवमार्ग का, वन्दूं श्री जगदीश॥

(इति पुष्पांजलि क्षिपामि/क्षिपेत्)

(जोगीरासा)

दर्शन-ज्ञान स्वभाव जीव में नियत आचरण शिवपथ।

आत्माश्रित स्व-समय कहा पर-समय राग में परिणत॥

राग रहित स्व-संवेदन को स्व-समय कहें जिनेश्वर।

राग सहित शुभ-अशुभ भावरत को पर-समय कहें गुरु॥1॥

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित का है व्यवहार निरूपण॥

इसके द्वारा साध्यरूप निश्चय शिवपन्थ प्ररूपण॥

किन्तु पुण्य व्यवहार मार्ग से मुक्तिमार्ग, निश्चय से -

आत्माश्रित सुख उपादेय है बुध प्रतीति यह करते॥2॥

जो स्थूल पर-समय है वह मुक्ति राग से माने।

सूक्ष्म पर-समय बचे अशुभ से अतः पुण्य में वर्ते॥

अतः मुक्ति के वांछक पर में किंचित् राग न करते।

वीतराग भावों से भविजन भवसागर से तिरते॥3॥

(दोहा)

इसप्रकार संक्षेप में यह तृतीय अधिकार।

कहा अल्पमति से प्रभो! पाऊँ पद अविकार॥4॥

श्री पंचास्तिकाय संग्रह परमागम विधान (139)

ॐ हीं मोक्षमार्गस्वरूपप्रसूपक तृतीय-अधिकार-समन्वित-
पंचास्तिकायपरमागमाय अनर्थपदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा।

महाघ्र

(दोहा)

जिन-प्रवचन की भक्ति से प्रेरित हुए विचार।

कहा सूत्र पंचास्ति जिन-प्रवचन का सार॥

(हरिगीतिका)

पारमेश्वरी यह देशना वैराग्य में प्रेरित करे।
वैराग्यमय परिणमन से उसकी प्रसिद्धि के लिए॥
अति वेग से प्रेरित हुआ मन जिन-वचन अनुराग से।
पंचास्ति संग्रह सूत्र रचना हो गई अति भक्ति से॥1॥

निज द्रव्य-गुण-पर्याय के भी भेद में अटकी मति।
तो अन्यवश गुरुवर कहें सुधरी नहीं उसकी गति॥
किन्तु निर्मल ध्यान का पुरुषार्थ हो पाता नहीं।
अतएव प्रभु वचनामृतों के पान में मम मति जगी॥2॥

चैतन्य-रस को मुक्ति का साक्षात् कारण है कहा।
अतएव किंचित् राग भी होवे नहीं मुझमें कदा॥
व्यवहार से शुभ राग को भी मुक्ति का कारण कहा।
किन्तु वह साक्षात् सुरगति क्लेश का कारण कहा॥3॥

निर्ग्रन्थ के अमृत वचन भ्रम-रोग शीघ्र निवारते।
चैतन्यमय निज द्रव्य-गुण-पर्याय रूप प्रकाशते॥
जब तक न परिणति लीन हो चिन्मात्र ज्ञायक भाव में।
हे गुरु! हमारे उर बसो मम उर बसे तव मार्ग में॥4॥

(140) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

सर्वज्ञ द्वारा कथित होने से अहो ये सूत्र हैं।
सम्पूर्ण वस्तु तत्त्व प्रतिपादन करें संक्षेप से॥
कुन्दकुन्दाचार्यकृत यह कार्य अब पूरा हुआ।
कृतकृत्य हो अत्यन्त हम नैष्कर्म्य में विश्रान्त हों॥५॥

(रोला)

निज शक्ति से वस्तु तत्त्व को जो कहते हैं।
ऐसे शब्दों ने कर दी यह समय व्याख्या॥
अमृतचन्द्र सूरि मैं तो निजरूप गुप्त हूँ।
टीका में मेरा किंचित् कर्तव्य नहीं॥६॥

परमागम की भक्तिभाव से प्रेरित होकर।
रचा गया यह लघु विधान हो परिणति निर्मल॥
स्वाध्याय सब आद्योपान्त करें ग्रन्थों का।
प्रकट करें पदवी अनर्घ्य भविजन सब अविचल॥७॥

ॐ ह्रीं षट्द्रव्यनवपदार्थ-मोक्षमार्गप्रतिपादक-पंचास्तिकायपरमागमाय
अनर्घ्यपद-प्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

श्रद्धा-ज्ञान-चरित्र की सुमन सुरभिमय पन्थ।
परिणति में महके प्रभो! रत्नत्रय की गन्ध॥८॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

समुच्चय महार्घ्य

(दोहा)

सप्त तत्त्व छह द्रव्य अरु मोक्षमार्ग का ज्ञान।
भाव-अर्घ्य अर्पित करूँ श्रुत-पंचास्ति महान॥

(मरहठा माधवी)

छह द्रव्यों में जीव द्रव्य मैं चेतनरूप महान हूँ।
 परम पारिणामिक स्वभाव ज्ञायक अनन्त गुणखान हूँ॥
 शेष पाँच जड़ द्रव्य सभी सत् व्यय-उत्पाद स्वरूप हैं।
 अपने-अपने स्व-चतुष्टय में हैं स्वतन्त्र निजरूप में॥1॥

धर्म-अधर्म अमूर्तिक निष्क्रिय गति-स्थिति में निमित्त है।
 किन्तु न प्रेरक बनें किसी को उदासीन ये द्रव्य हैं॥
 अहो! सिद्ध भी निष्क्रिय और अमूर्त अप्रेरक राजते।
 सिद्ध-गति एवं स्वरूप में थिरता के कारण कहे॥2॥

पर से है निर्लिप्त सदा आकाश प्रदेश अनन्त है।
 सबको अवगाहन देता यह नय-व्यवहार वदन्त है॥
 एक प्रदेशी कालाण् वर्तना स्वरूप अमूर्त है।
 पर्यायें अपने स्वकाल में विलसित हों निजरूप में॥3॥

जीव और पुद्गल की निज-निज आस्रवादि पर्याय हैं।
 दोनों अपनी पर्यायों के कर्ता, वस्तुस्वभाव है॥
 हेय-ग्राह्य परिज्ञान हेतु इन पाँचों का परिज्ञान हो।
 औपाधिक पाँचों तत्त्वों से भिन्न आत्मश्रद्धान हो॥4॥

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित ही एकमात्र शिवपन्थ है।
 रागमात्र को हेय बताया ग्रन्थों में निर्ग्रन्थ ने॥
 ग्रन्थ रचयिता टीकाकर्ता को वंदन शतबार हो।
 सर्व विकल्पों से विमुक्त हो नमता हूँ निर्भार हो॥5॥

(दोहा)

शिवपुर पथ पर गमन हो कब होऊँ निर्ग्रन्थ।

अर्घ्य समर्पित कर प्रभो! हुआ आज मैं धन्य॥6॥

ॐ हीं वीतरागताप्रेरक श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः महाधर्य
 निर्वपामीति स्वाहा ।

(142) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

जयमाला

(दोहा)

जयवन्तो जिनसूत्र यह जयवन्तो जिनराज।
जिनशासन जयवन्त हो जय हो सिद्ध समाज॥1॥

(वीरछन्द)

सात तत्त्व छह द्रव्य और रत्नत्रयमय शिवपन्थ कहा।
सभी जीव दुख से विमुक्त हों मुनिवर करुणावन्त महा॥
वीतरागता ही मुक्तिपथ राग न किंचित् मुझको हो।
मैं शिवकामी वीतराग हो पार करूँ भवसागर को॥2॥

यदि अरहन्तों के प्रति भी हो राग आग है चन्दन की।
अतः वीतरागी होकर प्रभु! परिणति हो शिवनन्दन की॥
साम्यभाव ही मुक्तिमार्ग है सकल शास्त्र-तात्पर्य यही।
परम समाधि निर्विकल्प से प्राप्ति कही है शिवपद की॥3॥

मोक्षमार्ग पुरुषार्थ प्रकट हो अतः कहें छह द्रव्य जिनेश।
नव पदार्थ का सविस्तार वर्णन करते सर्वज्ञ महेश॥
बन्ध-मोक्ष के स्वामी, भेद-प्रभेदों को भी बतलाया।
नय-विरोध को दूर किया है इष्ट-सिद्धि पथ दिखलाया॥4॥

भेद-वासना है अनादि से अतः भिन्न साधन अरु साध्य।
ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता को जाने क्रमशः करे मोह का नाश॥
भेद-वासना वाला साधक भिन्न साध्य-साधन द्वारा।
कुछ विशुद्धि होने पर साधन-साध्य अभिन्न भाव को पा॥5॥

क्रियाकाण्ड के आडम्बर से हो विमुक्त निज में विश्रान्त।
परम समरसी भाव प्राप्त कर पूर्ण साधना करता सन्त॥
केवल व्यवहाराभासी नहिं और न मात्र निश्चयाभास।
यथायोग्य शिवपथ आराधक साधक का शिवसुख में वास॥6॥

(दोहा)

इसप्रकार शिवपन्थ की गाऊँ प्रभु जयमाल।

अर्द्ध समर्पित कर रहा हो श्रद्धान स्वकाल॥7॥

ॐ ह्रीं श्रीपंचास्तिकायसंग्रहजिनागमाय नमः जयमालापूर्णार्द्धं
निर्वपामीति स्वाहा ।

(दोहा)

श्री जिनभक्ति प्रसाद से पूरा हुआ विधान।

दर्श-ज्ञान-चारित्र से हो भव का अवसान॥8॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

॥ जाप्य मन्त्र ॥

ॐ ह्रीं श्रीसम्पूर्णपंचास्तिकायपरमागमाय नमः ।

(इसके पश्चात् पृष्ठ 237-238 पर दिए गए महार्घ्य एवं शान्ति पाठ पढ़ें।)

दर्शन-स्तुति

निरखत जिनचन्द्र-वदन स्व-पद सुरुचि आई।

प्रकटी निज आन की पिछान ज्ञान भान की।

कला उद्योत होत काम-जामनी पलाई ॥ निरखत. ॥

शाश्वत आनन्द स्वाद पायो विनस्यो विषाद।

आन में अनिष्ट-इष्ट कल्पना नसाई ॥ निरखत. ॥

साधी निज साध की समाधि मोह-व्याधि की।

उपाधि को विराधि कैं आराधना सुहाई ॥ निरखत. ॥

धन दिन छिन आज सुगुनि चिन्ते जिनराज अबै।

सुधरो सब काज ‘दौल’ अचल रिद्धि पाई ॥ निरखत. ॥

- पण्डित दौलतरामजी

(144) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

अन्तिम प्रशस्ति

(दोहा)

धन्य जिनेश्वर देव हैं, धन्य गुरु निर्गन्थ।
जिनकी वाणी में बसे, स्वानुभूति शिवपन्थ॥1॥

भक्तिभाव से रच गया, यह पंचास्ति विधान।
व्यय हो पूर्ण विकार का, हों निर्मल परिणाम॥2॥

कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी, अकट्टबर छब्बीस।
पूर्ण हुई रचना अहो, दो सहस्र उन्नीस॥3॥

योग-निरोधी वीर प्रभु, तेरस बनी सुधन्य।
मम परिणति में नित बसे, चाह न कोई अन्य॥4॥

पद्मप्रभु भगवान का जन्म-रु तपकल्याण।
मम उर-सखर में बसें पद्मप्रभ भगवान॥5॥

स्वर व्यंजन मात्रादि या भावों की हो भूल।
ध्यानाकर्षित बुध करें, हो सुधार अनुकूल॥6॥

यथा अकर्ता हैं गुरु अमृतचन्द्राचार्य।
मुझमें भी कर्तृत्व का, लेश न होय विकार॥7॥

इस रचना के काल में, ज्ञात और अज्ञात।
हुए सभी अपराध जो, क्षमा करें जिनराज॥8॥

पंच प्रभू जयवन्त हों, जिनशासन जयवन्त।
श्रीजिन-चरण-प्रसाद से, हो विकल्प का अन्त॥9॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

परिक्रमा गीत

(तर्ज : श्री सिद्धचक्र का पाठ करो...)

पंचास्तिकाय यह ग्रन्थ, लिखें निर्गन्थ, तत्त्व परकाशे।
परिणति में चिन्मय भासे।

छह द्रव्य स्वरूप दिखाता है, जड़-चेतन भिन्न बताता है।
उपयोग स्वरूप चिदात्म सदा प्रतिभासे॥1॥

नव तत्त्व भेद दिखलाता है, व्यवहार जीव बतलाता है।
परमार्थ जीव चैतन्यमात्र प्रतिभासे॥2॥

शुभ अशुभ राग तो दुखमय है, बस साम्यभाव ही सुखमय है।
निश्चय रत्नत्रय को ही शिव बतलाये॥3॥

मुनि कुन्दकुन्द ने ग्रन्थ लिखा, की सुधाचन्द्र गुरु ने टीका।
इसमें हैं ग्रन्थकार के भाव प्रकाशे॥4॥

तात्पर्यवृत्ति जयसेन लिखी, पढ़कर मन की सब कली खिली।
गुरुदेव-चरण में नमते शीश हमारे॥5॥

(146) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

श्री अष्टपाहुड़ परमागम विधान

(यह विधान करने से पूर्व समय की अनुकूलता के अनुसार आचार्य
कुन्दकुन्द पूजन का आनंद अवश्य लेवें।)

पीठिका

(दोहा)

नमूँ मुनीश्वर कुन्द को, परमागम दातार।
रचना पाहुड़-अष्ट की, भविजन को हितकार॥1॥

(मरहठा माधवी)

धन्य-धन्य निर्ग्रन्थ शिरोमणि कुन्दकुन्द आचार्य हैं।
परमागम की रचना करके किया परम उपकार है॥
सीमन्धर सन्देशा लाये निज निर्मल श्रुतज्ञान में।
चिदानन्द-रस पीते गुरुवर स्व-संवेदन ज्ञान में॥2॥
निर्ग्रन्थों के पथ में भी जब फैला शिथिलाचार है।
ग्रन्थ अष्टपाहुड़ रचना की, गुरुवर का उपकार है॥
सर्वारम्भ परिग्रह विरहित मार्ग एक शिवपन्थ है।
त्रैकालिक ध्रुव ज्ञानतत्त्व ही स्वाभाविक निर्ग्रन्थ है॥3॥
'दंसण मूलो धम्मो' दर्शन पाहुड़ का सन्देश है।
यथाजात निर्ग्रन्थरूप में परिग्रह का न प्रवेश है॥
चारित्र के दो भेद कहे हैं समकित-संयम आचरण।
ग्यारह रूपों में साधू को बोध कराते हैं श्रमण॥4॥
भाव-शुद्धि के लिए बाह्य-परिग्रह का होता त्याग है।
पाहुड़-मोक्ष कहे भविजन को बन्ध हेतु बस राग है॥
जिनमत में बस तीन लिंग ही मान्य कहे जिनराज ने।
शील सलिल से शुद्ध मुनि ही पाते शिव-साम्राज्य हैं॥5॥
इस प्रकार इस ग्रन्थ में, निर्ग्रन्थों का पन्थ।
धन्य-धन्य स्वाधीन है, मार्ग परम निर्ग्रन्थ॥6॥
(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

॥ श्री अष्टपाहुड़ परमागम पूजन ॥

(हरिगीतिका)

निर्ग्रन्थ पन्थ रहे प्रतिष्ठित ज्ञान में श्रद्धान में।
जीवन्त होकर अवतरित हो क्रिया में परिणाम में॥
इस भावना से ग्रन्थ की पूजा करूँ हे नाथ! मैं।
दृग-ज्ञान-चारित में सदा रहिए सदा मुझ साथ में॥

(दोहा)

निर्ग्रन्थों के मार्ग का वर्ते दृढ़ श्रद्धान।
अर्पित हैं श्रद्धा-सुमन, निर्मल हों परिणाम॥

ॐ ह्रीं निर्ग्रन्थमार्गप्रकाशक-श्रीअष्टपाहुडपरमागम! अत्र अवतर अवतर
संवौषट् । (इति आहवानम् ।)

ॐ ह्रीं निर्ग्रन्थमार्गप्रकाशक-श्रीअष्टपाहुडपरमागम! अत्र तिष्ठ तिष्ठ
ठः ठः । (इति स्थापनम् ।)

ॐ ह्रीं निर्ग्रन्थमार्गप्रकाशक-श्रीअष्टपाहुडपरमागम! अत्र मम सन्निहितो
भव भव वषट् । (इति सन्निधिकरणम् ।)

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

(हरिगीतिका)

निर्ग्रन्थता की भावनामय नीर उर-सर में भरा।
श्रद्धान कर श्रुत-देव-गुरु का नशूँ जन्म मृत्यु जरा॥
यह अष्टपाहुड ग्रन्थ गुरुवर कुन्द की अनुपम कृपा।
निर्ग्रन्थता शिव-पन्थ शाश्वत जगत को बतला दिया॥

ॐ ह्रीं निर्ग्रन्थमार्गप्रकाशक-श्रीअष्टपाहुडपरमागमाय जन्मजरामृत्यु-
विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

(148) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

निर्ग्रन्थ गुरुवर के वचन-शीतल भवातप क्षय करें।

श्रुतभक्ति मलयज कर समर्पित ताप परिग्रह का नशें॥

यह अष्टपाहुड़ ग्रन्थ गुरुवर कुन्द की अनुपम कृपा।

निर्ग्रन्थता शिव-पन्थ शाश्वत जगत को बतला दिया॥

ॐ ह्रीं निर्ग्रन्थमार्गप्रकाशक-श्रीअष्टपाहुडपरमागमाय संसारताप-
विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्ग्रन्थ पथ ही है अखंडित मोक्षपथ उर में बसे।

श्रुतभक्ति अक्षत है समर्पित पद अखंडित चाहते॥

यह अष्टपाहुड़ ग्रन्थ गुरुवर कुन्द की अनुपम कृपा।

निर्ग्रन्थता शिव-पन्थ शाश्वत जगत को बतला दिया॥

ॐ ह्रीं निर्ग्रन्थमार्गप्रकाशक-श्रीअष्टपाहुडपरमागमाय अक्षयपदप्राप्तये
अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

निर्ग्रन्थ-गुरु निष्काम भक्ति, कामना सब नाशती।

मम भक्ति भी निष्काम अर्पित काम-गन्ध विनाशती॥

यह अष्टपाहुड़ ग्रन्थ गुरुवर कुन्द की अनुपम कृपा।

निर्ग्रन्थता शिव-पन्थ शाश्वत जगत को बतला दिया॥

ॐ ह्रीं निर्ग्रन्थमार्गप्रकाशक-श्रीअष्टपाहुडपरमागमाय कामबाण-
विधवंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्ग्रन्थ पद की भावना परिग्रह-क्षुधा को क्षय करे।

श्रुत-रति अनूपम स्वादमय नैवेद्य तृष्णा को हरे॥

यह अष्टपाहुड़ ग्रन्थ गुरुवर कुन्द की अनुपम कृपा।

निर्ग्रन्थता शिव-पन्थ शाश्वत जगत को बतला दिया॥

ॐ ह्रीं निर्ग्रन्थमार्गप्रकाशक-श्रीअष्टपाहुडपरमागमाय क्षुधारोग-
विधवंसनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्ग्रन्थ-वचनों की किरण से स्व-पर भेद-विज्ञान हो।

श्रुत-दीप से निज-पर प्रकाशूँ मोह-तम की हानि हो॥

यह अष्टपाहुड़ ग्रन्थ गुरुवर कुन्द की अनुपम कृपा।

निर्ग्रन्थता शिव-पन्थ शाश्वत जगत को बतला दिया॥

ॐ ह्रीं निर्ग्रन्थमार्गप्रकाशक-श्रीअष्टपाहुडपरमागमाय मोहान्धकार-
विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्ग्रन्थ गुरु ध्यानाग्नि से रागादि मल को क्षय करें।

श्रुतभक्ति अर्पित कर चरण में निजातम निर्मल करें॥

यह अष्टपाहुड़ ग्रन्थ गुरुवर कुन्द की अनुपम कृपा।

निर्ग्रन्थता शिव-पन्थ शाश्वत जगत को बतला दिया॥

ॐ ह्रीं निर्ग्रन्थमार्गप्रकाशक-श्रीअष्टपाहुडपरमागमाय अष्टकर्म-
विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्ग्रन्थता की भावना-तरु मुक्ति-फलदायक अहो।

गुरु-भक्ति फल चाहूँ यही निर्वाछ मम परिणति रहो॥

यह अष्टपाहुड़ ग्रन्थ गुरुवर कुन्द की अनुपम कृपा।

निर्ग्रन्थता शिव-पन्थ शाश्वत जगत को बतला दिया॥

ॐ ह्रीं निर्ग्रन्थमार्गप्रकाशक-श्रीअष्टपाहुडपरमागमाय मोक्षफल-प्राप्तये
फलं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्ग्रन्थ के निर्भार आनन्द का कहूँ क्या मोल है।

यह भक्ति-अर्ध्य करूँ समर्पित लहूँ सौख्य अबोल है॥

यह अष्टपाहुड़ ग्रन्थ गुरुवर कुन्द की अनुपम कृपा।

निर्ग्रन्थता शिव-पन्थ शाश्वत जगत को बतला दिया॥

ॐ ह्रीं निर्ग्रन्थमार्गप्रकाशक-श्रीअष्टपाहुडपरमागमाय अनर्धपदप्राप्तये
अर्ध्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(150) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

1

॥ श्री दर्शनपाहुड़ के लिए अर्थ ॥

(रोला)

आगम आप्त पदार्थ कहे जो अरहन्तों ने।
जीवादिक नव तत्त्व बताए भगवन्तों ने॥
इनका हो निर्णय यथार्थ सम्यक् प्रतिभासन।
मैं हूँ चिदानन्द चिदूधन यह दृष्टि सुदर्शन॥1॥

सम्यग्दर्शन शिवगृह की आधार-शिला है।
इसमें गुण अनंतमय अनुपम स्वाद मिला है॥
ग्रन्थराज में यह पहला अधिकार कहा है।
ग्रन्थकार ने इसे धर्म का मूल कहा है॥2॥

(दोहा)

स्व-सन्मुख दृष्टि में, हो समकित अवतार।
परिणति में तिष्ठो सदा, ज्ञायक ही आधार॥3॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

(जोगीरासा)

सम्यग्दर्शन बिना ज्ञान तप व्रत संयम मिथ्या हैं।
बोधिलाभ के बिना चतुर्गति में चिरकाल भ्रमण है॥
चिदानन्द रसमय अनुभूति-स्वरूप पूर्ण चारित हो।
अतः जिनेश्वर धर्म-मूल कहते सम्यग्दर्शन को॥4॥

समकित को केवलश्री वरती कर्म-कलंक मिटाके।
दंसणभट्टा पूर्ण भ्रष्ट हैं कभी न शिव-सुख पाते॥
मूलरहित तरुवत् अज्ञानी पा न सकें शिवफल को।
अतः जिनेश्वर धर्म-मूल कहते सम्यग्दर्शन को॥5॥

अज्ञानी ज्ञानी से विनय करायें ज्ञानी न त हों -
लज्जा गारव भय से तो वे उनके अनुमोदक हों॥
समकित से हो ज्ञान हिताहित का अरु शील सुखद हो।
जिन-वचनामृत से इन्द्रियसुख-वांछा शीघ्र विलय हो॥16॥

आतम में अपनापन समकित तत्त्वप्रीति-व्यवहारी।
प्रथम मुक्ति-सोपान यही, श्रद्धानी शिवमगचारी॥
दर्शहीन होकर गर्वित नहिं नमें संयमी जन को।
संयम बिन, दृग-हीन नम को भी न कभी भी वन्दो॥17॥

तीर्थनाथ की वाणी समकित में निमित्त है होती।
समकित युत तप ज्ञान चरित से मुक्तिवधू खुश होती।
जिनवर ही थावर प्रतिमा जो आतम-दर्श कराती।
हे प्रभु! अष्टांगी समकित से शोभित हो मम परिणति॥18॥

ॐ ह्रीं दर्शनपाहुड़विभूषित-श्रीअष्टपाहुडपरमागमाय अर्घ्य
निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

भवकारक कुज्ञान का जात्यन्तर हो जाय।
हे समकित! कल्याणमय, नमूँ सदा चित् लाय॥19॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

2

॥ श्री सूत्रपाहुड़ के लिए अर्घ्य ॥

(हरिगीतिका)

वीर हिमगिरि से प्रवाहित शारदा भागीरथी।
गौतम गुरु के स्वानुभव श्रुतज्ञान में झेली गई॥

(152) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

मोह के उत्तंग शृंगों का अहो! भेदन किया।
जगत की जड़ता मिटाने ज्ञान-रवि समुदित हुआ॥1॥
अज्ञान-तम नाशक प्रकाशक द्रव्य तत्त्व पदार्थ का।
संसार-सागर पार करने के लिए नौका अहा॥
हे भारती! मम उर विराजो मोह-तम भेदन करो।
चैतन्य-किरणों में सदा चिद्रूप का वेदन रहो॥2॥

(दोहा)

श्री जिन-भाषित सूत्र मम-श्रुत में लो अवतार।
तिष्ठें निर्मल ज्ञान में, भवदधि तारणहार॥3॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

(रोला)

सूत्र और अर्थों का शोधन करते मुनिजन।
मुक्तिमार्ग में गमन करें निश्चित वे भविजन॥
धागा युत सुइ नहिं खोती त्यों संसारी जन।
सूत्रार्थ को जान करें निज का संवेदन॥4॥

सूत्र और पद-हीन मुनी भी पूज्य नहीं है।
नर-सुर हो या हरि-हर की भी मुक्ति नहीं है॥
कर-पात्री निर्गन्थ मुनी ही शिवमगचारी।
परिग्रह-त्यागी मुनिवर को वन्दना हमारी॥5॥

दर्शन-ज्ञान सहित श्रावक को इच्छाकारी।
धारण करते ग्यारह प्रतिमाएँ सुखकारी॥
मन-वच-तन से आत्मरुचि ही शिवमारग है।
तिल-तुष बिन, कर-पात्र अशन है मुनिमारग में॥6॥

अल्प परिग्रहयुक्त साधु भी निन्दनीय है।
 पंच महाब्रत त्रय गुप्तियुत वन्दनीय है॥
 उत्तम श्रावक और आर्थिका भेष कहें जिन।
 वस्त्र सहित भी मुक्ति न पाते तीर्थकर जिन॥7॥

नारी तन में मुनिदीक्षा कैसे हो सकती?
 दर्श-ज्ञान-चारित से नारी की अघ-मुक्ति॥
 नारी के परिणाम सहज ही शिथिलरूप हों।
 प्राकृतिक कारण से वे नहिं ध्यानरूप हों॥8॥

ॐ हीं सूत्रपाहुडविभूषित-श्रीअष्टपाहुडपरमागमाय अर्घ्यं निर्वपामीति
 स्वाहा।

(दोहा)

धन्य धन्य जिनसूत्र हैं, स्व-पर प्रकाशक दीप।
 अर्पित हैं श्रद्धा-सुमन, प्रकटे ज्ञान-प्रदीप॥9॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

3

॥ श्री चारित्रपाहुड के लिए अर्घ्य ॥

(हरिगीतिका)

श्रद्धान-संयम भाव का आचरण उर में अवतरे।
 चैतन्य-चन्द्र सदा प्रकाशित ज्ञान-किरणों में रहे॥
 अष्टांगमय अरु दोष पच्चिस रहित सम्यक्त्वाचरण।
 पापमल से रहित निज में लीन चारित आचरण॥1॥

दर्श-ज्ञान प्रधान आश्रमरूप समता भाव हो।
 चारित्रमय निज धर्म-परिणति का प्रभो! अवतार हो॥

(154) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

मोह क्षेभ विहीन निज परिणाम निर्मल ही रहें।
अतीन्द्रिय आनन्द सरिता ज्ञान में बहती रहे॥2॥

(दोहा)

ब्रत संयम तपरूप निज-आराधन अवतार।
परिणति में तिष्ठे सदा, हे जिन! पंचाचार॥3॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

(मरहठा माधवी)

पंच प्रभु की करूँ बन्दना रत्नत्रय परिणाम हों।
जाननहारा ज्ञान प्रतीति दर्शनयुत आचार हो॥
समकित अरु संयम स्वरूप आचरणरूप शिवपंथ हो।
समकित अरु संयम भूषित जिनशासन जग जयवन्त हो॥4॥

अष्ट अंग पच्चीस दोष विरहित निर्मल सम्यक्त्व हो।
मूढ़दृष्टि संयमधारी भी कभी न मुक्तिकन्त हो॥
दर्शन में उत्साह प्रशंसा सेवा से शिवपन्थ हो।
सम्यग्दर्शन प्रकटे जिनवर! जिनशासन जयवन्त हो॥5॥

मोह भाव से रहित जीव के रत्नत्रय परिणाम हों।
अनगारी अथवा सागारी संयम भी निष्काम हो॥
अणुब्रत गुणब्रत शिक्षाब्रत से जीवन सदा प्रसन्न हो।
रहूँ विषय से विरत जिनेश्वर! जिनशासन जयवन्त हो॥6॥

पंच महाब्रत समिति इन्द्रि-जय आवश्यक जीवन्त हो।
ब्रत पोषक भावना सदा संयम परिपूर्ण महन्त हो॥
जिन-उपदेशित भव्य जनों को ज्ञानमयी शिवपन्थ हो।
ज्ञान ज्ञान में रमें जिनेश्वर! जिनशासन जयवन्त हो॥7॥

जड़-चेतन को भिन्न जानने से रागादि विलीन हो।
 दर्शन-ज्ञान-चरित से योगी शाश्वत सुख में लीन हो।।
 समकित-संयम चरण पंथ से जन्म-मरण का अन्त हो।
 अर्ध्य समर्पित करूँ जिनेश्वर! जिनशासन जयवन्त हो॥18॥

ॐ ह्रीं चारित्रपाहुडविभूषित-श्रीअष्टपाहुडपरमागमाय अर्ध्य निर्वपामीति
 स्वाहा।

(दोहा)

निजस्वरूप में लीनता से प्रकटे समभाव।
 अर्पित हैं श्रद्धा-सुमन जयवन्तो निजभाव॥19॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

4

॥ श्री बोधपाहुड़ के लिए अर्ध्य ॥

(हरिगीतिका)

इस बोध पाहुड़ ग्रन्थ में हैं आयतन ग्यारह कहे।
 सम्यक् सुबोध लहें भविकजन त्वरित भवसागर तरें।
 हे नाथ! मैं निज ज्ञान-श्रद्धा में ग्रहण इनका करूँ।
 रतनत्रय निधि भेंट करके शीघ्र शिव-कामिनि वरूँ॥11॥

(दोहा)

निज परिणति में बोधि का हो मंगल अवतार।
 तिष्ठो मति-श्रुत में सदा होऊँ भव से पार॥12॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

(156) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

(हरिगीतिका)

इन्द्रियजयी रागादि-विरहित मुनीश्वर हैं आयतन।
सुविशुद्ध ज्ञान-रु ध्यानमय मुनिवर वृषभ सिद्धायतन॥
महाब्रतधारी ऋषीश्वर को नमूँ मन-वचन-तन।
वीतरागी मुनिवरों की वृत्ति में चैतन्य-घन॥3॥

चैतन्यमय सबको निरखते चैत्यगृह मुनि को नमूँ।
वीतरागी मुनी हैं प्रतिमा, उन्हें वन्दन करूँ॥
व्युत्सर्ग प्रतिमा सिद्ध प्रभु मुनिराज हैं जिनदर्शनम्।
वीतरागी मुनिवरों की वृत्ति में चैतन्य-घन॥4॥

ज्ञान संयम शुद्ध मुनिवर ही स्वयं जिनबिम्ब हैं।
आचार्य हैं अरहन्त मुद्रा, आत्म के प्रतिबिम्ब हैं॥
ज्ञान से निष्पन्न जिनमुद्रा करूँ नित वन्दनम्।
वीतरागी मुनिवरों की वृत्ति में चैतन्य-घन॥5॥

धर्मादि चौ पुरुषार्थ देते इसलिए मुनि देव हैं।
भवि करें दीक्षा-स्नान¹ उनमें अतः वे ही तीर्थ हैं॥
पाँच विधि से जान कर अरहन्त की श्रद्धा करूँ।
कैवल्य-दर्शन-ज्ञानमय प्रभु भाव-जिनवर को नमूँ॥6॥

प्रवर्ज्या का रूप गुरुवर गा रहे इस ग्रन्थ में।
समभावमय परिग्रह रहित दीक्षा कही निर्ग्रन्थ ने॥
जैनशासन में कथित मुनिराज को हो नित नमन।
यह अर्घ्य अर्पित हे प्रभो! अब लखूँ निज चैतन्य घन॥7॥

(दोहा)

बोधपाहड़ ग्रन्थ में हैं ग्यारह सोपान।
अर्पित हैं श्रद्धा-सुमन निरखूँ निज गुणखान॥8॥
ॐ ह्रीं बोधपाहुडविभूषित-श्रीअष्टपाहुडपरमागमाय अर्घ्य नि. स्वाहा।

1. दीक्षारूपी स्नान

॥ श्री भावपाहुड़ के लिए अर्घ्य ॥

(हरिगीतिका)

इस भावपाहुड़ ग्रन्थ में महिमा कही सम्यक्त्व की।
क्योंकि सम्यग्दर्श बिन किरिया सभी निष्फल कही॥
चिरकाल से सम्यक्त्व बिन हम भ्रम रहे संसार में।
हे नाथ! अब सम्यक्त्व नौका चढ़ भवोदधि पार हों॥1॥

(दोहा)

सम्यग्दर्शन ज्ञान अरु चारित निर्मल भाव।
परिणति में अवतरित हो चिदानन्द निज भाव॥2॥

(इति पुष्पांजलि क्षिपामि/क्षिपेत्)

(रोला)

भाव बिना सब क्रिया निर्थक गुरुवर कहते।
बाह्य क्रिया हो किन्तु जीव शिवपथ नहिं लहते॥
शुद्ध भाव बिन द्रव्यलिंग धर चारों गति में।
भ्रमण किया अरु बहु दुख भोगे हैं प्रभु हमने॥3॥
क्षुधा तृष्णा जन्मादिक दुख भोगे अनादि से।
किन्तु न सुख का बिन्दु आज तक हमने पाया॥
रत्नत्रय बिन तीन लोक में जन्म-मरण कर।
महा दुक्ख पाये माता के गर्भवास कर॥4॥
भाव-शुद्धि बिन तप से भी नहिं सिद्धि पाये।
हुए पूर्व में जीव बहुत जिन-आगम गाये॥
देहादिक को भिन्न जान निजरूप पिछानूँ।
स्व-पर भेद-विज्ञान प्रकट कर शिवपथ पाऊँ॥5॥

(158) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

मात्र देह निर्वस्त्र रहे पर भाव बिना तो।
जिनशासन में शिवपथ साधक साधु नहीं हो॥
भावलिंग सह वस्त्र त्याग भी सहज कहा है।
पुण्यभाव से स्वर्ग, किन्तु नहिं धर्म कहा है॥6॥

विविध भाँति से भाव-शुद्धि पुरुषार्थ प्रकट हो।
ब्रत तप आराधन निमित्त से शुद्धि प्रकट हो॥
तजूँ अशुद्धाहार क्षमा मार्दव धारूँ मैं।
सरल भाव धर गुरु समक्ष माया त्यागूँ मैं॥7॥

दीक्षा लेते समय हुई भावना सु-भाऊँ।
संज्ञा चारों तजूँ द्रव्यलिंग निर्मल धारूँ॥
तत्त्वों का चिन्तन करके वैराग्य बढ़ाऊँ।
नव तत्त्वों में छिपी आत्मज्योति प्रकटाऊँ॥8॥

शुद्ध भाव प्रकटा कर हम शिव-पदवी पायें।
पुण्योदय से प्राप्त पदों में नहीं लुभायें॥
षट् अनायतन त्याग सभी मिथ्यात्व तजें हम।
सप्त तत्व को जान निजात्म स्वरूप लखें हम॥9॥

परमात्मा को विष्णु बुद्ध परमेष्ठी कहते।
बोधि प्राप्ति के लिए प्रभू का पथ अपनाते॥
पंचम भाव स्वरूप शुद्ध चिद्रूप लखूँ मैं।
पद अनर्घ्य का भी विकल्प तज मुक्ति लखूँ मैं॥10॥

ॐ हीं भावपाहुडविभूषित-श्रीअष्टपाहुडपरमागमाय अर्घ्य नि. स्वाहा।
(दोहा)

धन्य-धन्य यह साधना धन्य मार्ग निर्गन्थ।
भाव-सुमन अर्पित करूँ पाऊँ शिवपुर पन्थ॥11॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

॥ श्री मोक्षपाहुड़ के लिए अर्घ्य ॥

(गोला)

छह द्रव्यों में जीव अखण्ड चिदानन्दरूपी।
बहिरातम् अन्तर-आतम परमात्मस्वरूपी॥
दुखमय, दुख-सुखरूप पूर्ण सुखमय पर्यायें।
इनको ही जिनदेव हेय अरु ग्राहय बतायें॥1॥

इन्द्रिय सुख है पराधीन दुखमय जिन कहते।
स्वाश्रित निर्मल शाश्वत सुखमय जीव बताते॥
दिव्यध्वनि में शाश्वत सुख का मार्ग बताया।
चहुँगति दुख से मुक्तिपन्थ रत्नत्रय गाया॥2॥

(दोहा)

पूर्ण निराकुलरूप सुख कही मुक्ति पर्याय।
आतम की निर्मल दशा शिवसुखरूप कहाय॥3॥
यही अवस्था साध्य है ऐसा दृढ़ श्रद्धान-
ज्ञान-चरण प्रकटे प्रभो! करता हूँ आहवान॥4॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

(अडिल्ल)

परमात्मा को वन्दन करके ध्याऊँ मैं।
योगीजन भी जिनका ध्यान सदा करें॥
देहादिक पर-द्रव्यों को पर जान कर।
तन-मन्दिर में चेतन परमात्मा लखूँ॥5॥
पर में रति से बन्ध स्व-रति से मुक्ति है।
पर-रति से दुर्गति स्व-रति से सिद्धि है॥

(160) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

मैं चेतन तन जड़, प्रतीति में आ गया।
आत्मध्यान में निश्चय शिवपथ पा गया॥6॥

वस्तु स्वरूप विचार धरूँ निज ध्यान मैं।
जागूँ आत्महितार्थ, सुप्त व्यवहार में॥

विषय-कषायों से विरहित निज ध्यान हो।
भेद-ज्ञान युत तप एवं चारित्र हो॥7॥

ज्ञान और तप उभय योग से सिद्धि हो।
भाव-द्रव्य लिंग बिना कभी नहिं मुक्ति हो॥

अज्ञानी पर-द्रव्यों में आसक्त हो।
समझावी मुनि पर से सदा विरक्त हो॥8॥

शिवपथ-गामी मोह-हीन निर्गन्थ हैं।
एक निजात्म ध्यान मुक्ति का पंथ है॥

धन्य धन्य श्रावक सम्यक्त्व सु-धारते।
कुगुरु कुदेव कुर्धम नहीं स्वीकारते॥9॥

आत्मज्ञान बिन बहुश्रुत बहुतप हो भले।
मात्र बाल-तप-श्रुत से नहिं मुक्ति मिले॥

निज आत्मा ही परमेष्ठी आराध्य हो।
अर्द्ध समर्पित मंगलमय इस ग्रन्थ को॥10॥

ॐ ह्रीं मोक्षपाहुड़विभूषित-श्रीअष्टपाहुडपरमागमाय अर्द्ध निर्वपामीति
स्वाहा।

(दोहा)

ग्रन्थ-मोक्षपाहुड़ कहे रत्नत्रय शिवमार्ग।
अर्पित हैं श्रद्धा-सुमन हो निर्मल पुरुषार्थ॥11॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

॥ श्री लिंगपाहड़ के लिए अर्घ्य ॥

(रोला)

भाव-द्रव्य लिंग की महिमा जिनशासन गाता।
 भाव-शुद्धि से द्रव्यलिंग भी निर्मल होता॥
 बाह्यान्तर निर्गन्थ दशामय मोक्षमार्ग का।
 आहवानन स्थापन सन्निधिकरणं करता॥11॥

(दोहा)

निश्चय अरु व्यवहार से जानूँ शिवपथरूप।
 वन्दू मैं निर्गन्थ पद जो निर्दोष स्वरूप॥१२॥
 (इति पृष्ठांजलि क्षिपामि/क्षिपेत्)

(हरिगीतिका)

निर्ग्रन्थ लिंग बिन मुक्ति का पुरुषार्थ तीव्र न हो कभी।
वीतरागी साम्य परिणति रहित वेश यथार्थ नहीं॥
अतः ज्ञायक भाव में हो लीनतामय आचरण।
तो सहज ही मूलगुणमय प्रकट हो बाह्याचरण॥3॥
भाव-शुद्धि के बिना हठपूर्वक यदि नग्न हो।
आत्म-अवलम्बन बिना चित् विषय-सुख में मग्न हो॥
तो निंद्य हीनाचारमय किरिया हुए बिन ना रहे।
कहकर कठोर वचन उन्हें आचार्य सम्बोधन करें॥4॥
हे नाथ! मैं अज्ञानवश लिंग-बाह्य में सन्तुष्ट हो।
नग्न हो शुभराग में शिव-मार्ग माना तुष्ट हो॥
अथवा विविध हीनाचरण से मार्ग को लज्जित किया।
शुभाशुभ परिणाम द्वारा कर्म-मल मज्जित हुआ॥5॥

(162) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

किन्तु अब सौभाग्य से उपदेशदाता गुरु मिले।
गुरु-वचन किरणों से प्रफुल्लित हृदय-सर पंकज खिले॥
चैतन्यमय निजरूप अब श्रुतज्ञान में भासित हुआ।
अणुब्रत महाब्रत का यथार्थ स्वरूप प्रतिभासित हुआ॥61॥
ॐ हीं लिंगपाहुडविभूषित-श्रीअष्टपाहुडपरमागमाय अर्घ्य नि. स्वाहा।
(दोहा)

धन्य लिंगपाहुड़ अहो, शिव-सन्मार्ग दिखाय।
अर्पित हैं श्रद्धा-सुमन! अब जिन-मार्ग सुहाय॥71॥
(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

8

॥ श्री शीलपाहुड़ के लिए अर्घ्य ॥

(हरिगीतिका)

ज्ञान-दर्शन चेतनामय शील आत्मस्वभाव है।
मोह-राग-रु द्वेष पर-आश्रित सभी विभाव हैं॥
लाख चौरासी कहे हैं भेद शील स्वभाव के।
भेद अष्टादश-सहस रमणी-विरति व्यवहार के॥11॥
(दोहा)

रत्नत्रय ही शील है, भाव-अब्रह्म कुशील।
चहुँगति भ्रमण कुशील है, शिवपददायक शील॥12॥
शुद्ध चेतना शील का वर्ते श्रद्धा-ज्ञान।
परिणति में प्रकटे प्रभो! करता हूँ आहवान॥13॥
(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

(रोला)

ज्ञान-शील की मैत्री है जिनवाणी कहती।
आत्मज्ञान है ज्ञान, शील है विषय-विरक्ति॥

हे प्रभु! विषय-विरक्त रहूँ बस यही कामना।
 शील भावना से मिट जाये विषय-वासना॥4॥

दर्श ज्ञान चारित्र अगर होवें एकाकी।
 तो निष्फल हैं फिर कैसे आशा शिवफल की॥

शील-विहीन ज्ञान से भी हो चहुँगति भ्रमणा।
 शील भावना से मिट जाये विषय-वासना॥5॥

ज्ञान सदा निर्दोष रहे सत्पथ दिखलाता।
 विषय विमोहित ज्ञानी भी शिवमारग पाता॥

जो उन्मार्ग दिखावे उसे न शिवपद पाना।
 अर्द्ध समर्पित करूँ मिटें सब विषय-वासना॥6॥

शील सहित ही अन्य सभी गुण सार्थक होते।
 ब्रत तप संख्या सभी शील के परिजन होते॥

विषय-हलाहल पीने से चिर भव-भव भ्रमणा।
 शील भावना से मिट जाये विषय-वासना॥7॥

सभी अंग में शील अंग ही सुन्दरतम है।
 विषयासक्ति से होता संसार-भ्रमण है॥

मात्र ज्ञान से भाव-शुद्धि है मात्र कल्पना।
 शील भावना से मिट जाये विषय-वासना॥8॥

शिवसुख कारण शील महा-महिमाशाली है।
 शीलवान की होय प्रशंसा तीन लोक में॥

शील सलिल से शुद्ध होय शिवश्री को वरना।
 अर्द्ध समर्पित करूँ मिटें सब विषय-वासना॥9॥

ॐ ह्रीं शीलपाहुड़विभूषित-श्रीअष्टपाहुडपरमागमाय अर्द्ध नि. स्वाहा।
 ब्रह्मचर्य महिमा कही, आत्मसाधना हेतु।
 भाव-अर्द्ध अर्पित करूँ, शिवपुर पथ में सेतु॥10॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

(164) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

महार्थ

(छप्पय)

जिनदर्शन निर्ग्रथरूप तत्त्वारथ धारन ।

सूतर जिनके वचन सार चारित ब्रत पारन ॥

बोध जैन का जांनि आन का सरन निवारन ।

भाव आत्मा बुद्ध मांनि भावन शिव कारन ॥

फुनि मोक्ष कर्म का नाश है लिंग सुधारन तजि कुनय ।

धरि शील स्वभाव संवारनां आठ पाहुड़ का फल सुजय ॥1॥

(रोला)

ग्रन्थ अष्टपाहुड़ की महिमा जान भविकजन ।

तत्त्वारथ श्रद्धा कर पायें सम्यग्दर्शन ॥

चारित पथ पर बढ़ें शीघ्र ही शिवपद पायें ।

भक्तिभाव से प्रेरित हो हम अर्घ्य चढ़ायें ॥

ॐ हीं निर्ग्रन्थमार्गप्रकाशक-श्रीअष्टपाहुडपरमागमाय समुच्चयमहाऽर्थ
निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

(रोला)

यह परमागम ग्रन्थ मार्ग-निर्ग्रन्थ प्रकाशक ।

कुन्दकुन्द के वचन-किरण मिथ्यामति नाशक ॥

गुरुवर्यों से उपकृत हो गुणगान करूँ मैं ।

अन्तर्मुख हो चिदानन्द रसपान करूँ मैं ॥1॥

(मरहठा माधवी)

सम्यग्दर्शन मूल धर्म का प्रथम चरण शिवपन्थ का ।

ज्ञान और चारित को यही बनाता पथ निर्ग्रन्थ का ॥

जिन-भाषित गणधर गूँथित जो सूत्र कहे जिनमार्ग में।
 उन्हें यथार्थ जानकर प्रभुवर पाऊँ सम्यग्ज्ञान मैं॥१२॥

समकित और संयमाचरणों से भूषित परिणाम हों।
 निर्गन्थों के पथ पर चलने का संकल्प महान हो॥।
 जिनदर्शन प्रतिमा मुद्रा गृह ज्ञान-देव अरहन्त हैं।
 एकादश सु-स्थानरूप निर्गन्थ साधु भगवन्त हैं॥३॥।

भाव-शुद्धि के बिना नम हो पा न सका शिवमार्ग मैं।
 काल अनन्त रुला प्रभुवर! पर अब न भ्रमूँ संसार मैं॥।
 तन में अपनापन अनादि से किन्तु मात्र चैतन्य मैं।
 निर्गन्थों के पथ पर चलकर होऊँगा शिवकन्त मैं॥४॥।

भाव-लिंग सह द्रव्य-लिंग निर्दोषरूप आचार हो।
 वन-खण्डों में विचरण करके भी चैतन्य विहार हो॥।
 चित्-स्वभावमय शीलाश्रय से ज्ञानानन्द सुवास हो।
 सादि अनन्त शीलमय रहकर सिद्धालय में वास हो॥५॥।

(दोहा)

ग्रन्थ अष्टपाहुड़ अहो, अष्ट सुगुण पद दाय।
 अष्ट द्रव्य अर्पण करूँ, अष्टम भू सुखदाय॥६॥।

ॐ ह्रीं निर्गन्थमार्गप्रकाशक-श्रीअष्टपाहुडपरमागमाय जयमालापूर्णाऽद्य
 निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

अष्ट सुगुण दातार, कुन्दकुन्द मुनि के वचन।
 वन्दन शत-शत बार, पुष्पांजलि अर्पित करूँ॥।

(इति पुष्पांजलि क्षिपेत्/क्षिपामि)

जाप्य मन्त्र - ॐ ह्रीं अष्टपाहुडपरमागमाय नमः।

॥ अन्तिम प्रशस्ति ॥

(दोहा)

धन्य जिनेश्वर देव हैं, धन्य गुरु निर्गन्थ।
जिनकी वाणी में बसे, स्वानुभूति शिवपन्थ॥1॥

भक्तिभाव पूर्वक रचा, पाहुड़-अष्ट विधान।
व्यय हो पूर्ण विकार का, निर्मल हों परिणाम॥2॥

अष्टादश अरु दो सहस वर्ष जून तिथि तीस।
शुद्धि सहित पूरण भया श्री जिनवर आशीष॥3॥

स्वर व्यंजन मात्रादि या भावों की हो भूल।
ध्यानाकर्षित बुध करें, हो सुधार अनुकूल॥4॥

वाणी और विकल्प का भी अकर्तृ अभिप्राय।
हे जिनवर! कर्तृत्व का रहे न लेश विकार॥5॥

इस रचना के काल में, ज्ञात और अज्ञात।
हुए सभी अपराध जो, क्षमा करें जिनराज॥6॥

पंच प्रभू जयवन्त हों, जिनशासन जयवन्त।
श्रीजिन-चरण-प्रसाद से, हो विकल्प का अन्त॥7॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपेत्/क्षिपामि)

(इसके पश्चात् पृष्ठ 237-238 पर दिए गए महार्घ्य एवं शान्ति पाठ पढ़ें।)



परिक्रमा गीत

मंगल विधान रचाओ...

मंगल विधान रचाओ म्हारा साथी,
रत्नत्रय निधि पाओ म्हारा साथी॥
आओ रे आओ आओ म्हारा साथी,
जीवन सफल बनाओ म्हारा साथी॥

निर्मल सम्यग्दर्शन पाओ,
श्री जिन-सूत्र हृदय में धारो।
चारित-निधि प्रकटाओ म्हारा साथी॥॥॥

सम्यक्-बोधमयी परिणति हो,
द्रव्य-भावलिंगमय जीवन हो।
मोक्ष-महल में आओ म्हारा साथी॥१२॥

जिनमुद्रा सर्वोत्तम लिंग हो,
शील मोक्ष-पथ का साधन हो।
भव-सागर तिर जाओ म्हारा साथी॥१३॥

श्री तत्त्वार्थसूत्र विधान

मंगलाचरण

(अनुष्टुप्)

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तदगुणलब्धये॥

(हरिगीत : तर्ज - जो राग-द्रेष विकार वर्जित...)

हे मुक्ति-पथ-नायक महा! तुम जानते सब सृष्टि को।
हे कर्म-गिरि-भेदक! नमूँ मैं, तव गुणों की प्राप्ति हो॥1॥

काल त्रय अरु द्रव्य लेश्या काय छह छह जिन कहें।
अस्तिकाय-रु समिति ब्रत गति ज्ञान पाँच जिनोक्त हैं॥

पदार्थ नव, चारित्र पाँच प्रकार शिवपथ मूल हैं।
श्रद्धा-प्रतीति-स्पर्श जो बुध करें शुद्ध सुदृष्टि हैं॥2॥

चौबीस जिनवर और गुरुवर गणधरों को नमन कर।
कुन्दकुन्दाचार्य स्वामी समय के दाता प्रवर॥

ग्रन्थ-कर्ता उमास्वामी गृद्धपिच्छ कहें जिन्हें।
गणधरों-सम कार्य करते नमूँ उनके चरण मैं॥3॥

अध्याय दश का ज्ञान हो तत्त्वार्थ का श्रद्धान हो।
चैतन्य में उपवास का फल मिले मुनिवर वच अहो॥

सभी टीकाकार मुनिवर चरण की अब लूँ शरण।
विधान रचना हेतु अब मैं करूँ मंगल आचरण॥4॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपेत्/क्षिपामि)

पीठिका

(दोहा)

चौबीसों जिन पद युगल, पंच प्रभू सिर नाय।
मोक्षशास्त्र इस ग्रन्थ का, सुगम विधान रचाय॥1॥

(हरिगीतिका)

शुद्धनय से जीव का, वर्णन समय के सार में।
किन्तु नय व्यवहार से, वर्णन किया इस शास्त्र में॥
प्रभो! नय-व्यवहार से, परमार्थ का विज्ञान हो।
दृष्टि में ज्ञायक बसे, व्यवहार का बस ज्ञान हो॥2॥

कुन्दकुन्दाचार्य के हैं, शिष्य स्वामि-उमा गुरु।
निर्ग्रन्थ-गुरु के ग्रन्थ पढ़, चैतन्य में विचरण करूँ॥
तत्त्व एवं अर्थ का, श्रद्धान परिणति में बसे।
निर्विकल्प प्रतीति से, आनन्द धारा नित बहे॥3॥

जीव की पहचान भेदों और भावों से कही।
देह इन्द्रिय योनि अरु त्रय लोक का वर्णन सही॥
सद्भूत नहिं व्यवहार यह, पर अनुपचरित इसे कहें।
परमार्थ समझाने अरे! इस भाँति जिन वर्णन करें॥4॥

बन्ध आस्रव कहे संवर निर्जरा विस्तार से।
क्योंकि प्रतिपादन कहा, परमार्थ का व्यवहार से॥
अतः इस व्यवहार को, उपचार मात्र सुजान कर।
परमार्थ को भूतार्थ लख, आश्रय करूँ इसका प्रवर॥5॥

इस ग्रन्थ की टीका लिखीं, गम्भीर बहु आचार्य ने।
सर्वार्थसिद्धि राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक आदि हैं॥
सिद्धान्त जिनवरकथित, पद्मति-न्याय से वर्णन किये।
हे प्रभो! इस रूप में, अब तुम बसो मेरे हिये॥6॥

(इति पुष्पांजलि क्षिपेत्/क्षिपामि)

(170) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

श्री तत्त्वार्थसूत्र पूजन

स्थापना

(दोहा)

भक्तिभाव से मैं रचूँ, यह संक्षिप्त विधान।

नय-प्रमाण से प्रकट हो, सप्त तत्त्व का ज्ञान॥1॥

स्वाध्याय से ग्रन्थ का, होवे सम्यग्ज्ञान।

स्व-संवेदन ज्ञान में, हो आनन्द महान॥2॥

(मरहठा माधवी : तर्ज - आओ बच्चो तुम्हें सुनायें...)

वन्दन श्री चौबीस जिनेश्वर, विचरें मम श्रद्धान में।

जिनका केवलज्ञान सुशोभित, होता मम श्रुतज्ञान में॥

आओ श्री जिनराज पधारो, मम अन्तर्मुख ज्ञान में।

मम परिणति में सदा विराजो, स्व-संवेदन ज्ञान में॥3॥

तत्त्वार्थसूत्र-कर्ता श्री गुरुवर, उमास्वामि आचार्य हैं।

पूज्यपाद अकलंक देव, विद्यानन्दि मुनिराज ने-

अति गम्भीर लिखी टीकाएँ, वनवासी निर्ग्रन्थ ने।

भाव सहित उर में धारण कर, विचरूँ मैं शिवपंथ में॥4॥

प्रभो! आज मैं अन्तर्मुख हो, नित्य निरंजन नाथ को।

निरखूँ और निहारूँ निज में, निज परिणति का वास हो॥

दश अध्यायों से शोभित, तत्त्वार्थसूत्र इस ग्रन्थ का।

आहवानन स्थापन सन्निधि-करण करूँ शिवपन्थ का॥5॥

ॐ हीं महाशास्त्र-श्रीतत्त्वार्थसूत्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (इत्याहवानम्)

ॐ हीं महाशास्त्र-श्रीतत्त्वार्थसूत्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (इति स्थापनम्)

ॐ हीं महाशास्त्र-श्रीतत्त्वार्थसूत्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (इति सन्निधिकरणम्) (इति पुष्पांजलिं क्षिपेत्/क्षिपामि)

अष्टक

(वीरछन्द)

चिर मिथ्यात्व महा मल से मेरी परिणति में भव-जंजाल।
सप्त तत्त्व श्रद्धानरूप जल से अब करूँ मोह प्रक्षाल॥
वीतराग सर्वज्ञ और हित-उपदेशी को करूँ नमन।
अहो! ग्रन्थ तत्त्वार्थसूत्र-कर्ता के बन्दूँ युगल-चरण॥
ॐ हीं श्री उमास्वामिविरचित-तत्त्वार्थसूत्रग्रन्थाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं
निर्वपामीति स्वाहा।

पर से सुखी-दुखी मैं होता, यह अनादि दुर्गन्ध रही।
अब सम्यक् प्रतीति बल से प्रभु, चिर कुवासना शीघ्र नशी॥
वीतराग सर्वज्ञ और हित-उपदेशी को करूँ नमन।
अहो! ग्रन्थ तत्त्वार्थसूत्र-कर्ता के बन्दूँ युगल-चरण॥
ॐ हीं श्री उमास्वामिविरचित-तत्त्वार्थसूत्रग्रन्थाय संसारतापविनाशनाय चन्दनं
निर्वपामीति स्वाहा।

क्षत-विक्षत परिणामों में, एकत्व बुद्धि से दुखी हुआ।
प्रभो! आज अक्षत निजात्म-दर्शन से सुख का बिन्दु चखा॥
वीतराग सर्वज्ञ और हित-उपदेशी को करूँ नमन।
अहो! ग्रन्थ तत्त्वार्थसूत्र-कर्ता के बन्दूँ युगल-चरण॥
ॐ हीं श्री उमास्वामिविरचित-तत्त्वार्थसूत्रग्रन्थाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान्
निर्वपामीति स्वाहा।

यह अत्यन्त अतृप्त वासना, है अनादि से व्याप रही॥
अब यथार्थ श्रद्धान-सुमन की, गन्ध ज्ञान में प्रकट हुई॥
वीतराग सर्वज्ञ और हित-उपदेशी को करूँ नमन।
अहो! ग्रन्थ तत्त्वार्थसूत्र-कर्ता के बन्दूँ युगल-चरण॥
ॐ हीं श्री उमास्वामिविरचित-तत्त्वार्थसूत्रग्रन्थाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं
निर्वपामीति स्वाहा।

(172) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

भोगे भोग अनन्त प्रभो! पर, भोग-वासना नहीं मिटी।
चिदानन्द रस स्वाद चखूँ अब, परम तृप्ति की राह मिली॥
वीतराग सर्वज्ञ और हित-उपदेशी को करूँ नमन।
अहो! ग्रन्थ तत्त्वार्थसूत्र-कर्ता के वन्दूँ युगल-चरण॥

ॐ हीं श्री उमास्वामिविरचित-तत्त्वार्थसूत्रग्रन्थाय क्षुधारोगविध्वंसनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोह-तिमिर से ग्रस्त ज्ञान में, ज्ञान-स्वभाव न भासित हो।
अब यथार्थ श्रद्धान ज्योति में, ज्ञायकभाव प्रकाशित हो॥
वीतराग सर्वज्ञ और हित-उपदेशी को करूँ नमन।
अहो! ग्रन्थ तत्त्वार्थसूत्र-कर्ता के वन्दूँ युगल-चरण॥

ॐ हीं श्री उमास्वामिविरचित-तत्त्वार्थसूत्रग्रन्थाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

राग-द्वेष के कीट पतंगों से, मम परिणति त्रस्त हुई॥
प्रभो! आज चैतन्य-सुरभि की, अनुभूति में मस्त हुई॥
वीतराग सर्वज्ञ और हित-उपदेशी को करूँ नमन।
अहो! ग्रन्थ तत्त्वार्थसूत्र-कर्ता के वन्दूँ युगल-चरण॥

ॐ हीं श्री उमास्वामिविरचित-तत्त्वार्थसूत्रग्रन्थाय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

मिथ्या श्रद्धा के फल में प्रभु! दुख अनन्त मैं भोग रहा।
दर्शन-मूल धर्म-तरु के फल मैं प्रभु! सुख अनन्त देखा॥
वीतराग सर्वज्ञ और हित-उपदेशी को करूँ नमन।
अहो! ग्रन्थ तत्त्वार्थसूत्र-कर्ता के वन्दूँ युगल-चरण॥

ॐ हीं श्री उमास्वामिविरचित-तत्त्वार्थसूत्रग्रन्थाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जड़ वैभव में सुख की मधुर कल्पना वर्त रही जिनराज।
 प्रभु! निज वैभव निज में लखकर, पाऊं निज अनर्थ पद आज॥
 वीतराग सर्वज्ञ और हित - उपदेशी को करूँ नमन।
 अहो! ग्रन्थ तत्त्वार्थसूत्र-कर्ता के बन्दूँ युगल-चरण॥
 ॐ ह्रीं श्री उमास्वामिविरचित-तत्त्वार्थसूत्रग्रन्थाय अनर्थपदप्राप्तये अर्थं
 निर्वपामीति स्वाहा।

अर्धावलि

(मानव)

दश अध्यायों में गुरुवर, करते तत्त्वों का वर्णन।
 नव तत्त्वों की श्रद्धा को कहता व्यवहार सु-दर्शन॥
 जो छिपा हुआ भेदों में वह एक रूप है चिन्मय।
 उसके अवलम्बन से ही हो मुक्ति वधू से परिणय॥1॥

(सोरठा)

जीव कहे व्यवहार, नव तत्त्वों के भेद को।
 नव तत्त्वों में सार, किन्तु शुद्ध चैतन्य ही॥2॥
 जिन-शासन जयवन्त, स्याद्‌वाद से शोभता।
 होवे भव का अन्त, जानूँ निज शुद्धात्मा॥3॥
 परम-अकर्ता नाथ, मैं ज्ञायक चैतन्य हूँ।
 कभी न छूटे साथ, परिणति में निज भाव का॥4॥
 पद-अनर्थ सुखदाय, यही शुद्ध परमार्थ ही।
 चरणन शीश नवाय, अर्पित हैं श्रद्धा-सुमन॥5॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपेत्/क्षिपामि)

1

जीव तत्त्व के अन्तर्गत मतिज्ञान आदि पाँच ज्ञान प्रस्तुपक

* प्रथम अध्याय के लिए अर्द्ध *

(दोहा)

चेतन लक्षण ज्ञान के, भेद अनेक दिखाय।
किन्तु अभेद स्वभाव के, आश्रय से शिव पाय॥1॥

(जोगीरासा)

मति श्रुत अवधि मनःपर्यय अरु केवल भेद कहे हैं।
किन्तु सभी ये सदा समर्पित एक ज्ञान पद में हैं॥
यही ज्ञान पद सारभूत है शिवपथ का अवलम्बन।
हे प्रभु! रत्नत्रय परिणति में ज्ञायक का हो वेदन॥2॥
दर्शन-ज्ञान-चरित्र भेद भी अनुभव में नहिं आवे।
द्रव्य और पर्याय भेद भी अनुभव में मिट जावे॥
भक्तिभावमय अर्द्ध समर्पित कर निर्वाचक होऊँ।
सहज प्रकट रत्नत्रय वैभव शाश्वत सुख नित भोगूँ॥3॥

ॐ ह्रीं श्री प्रथम-अध्यायसमन्वित-तत्त्वार्थसूत्रग्रन्थाय नमः अनर्घ्यपदप्राप्तये
अर्द्धं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

जानूँ सकल पदार्थ, नय प्रमाण निक्षेप से।
भासे निज परमार्थ, सुरभित श्रद्धा-सुमन से॥4॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपेत्/क्षिपामि)

जीव के पाँच भाव तथा जन्मस्थान आदि प्रस्तुपक

* द्वितीय अध्याय के लिए अर्द्ध *

(दोहा)

चार भाव से भिन्न है, पावन पंचम भाव।

जन्म-मरण जिसमें नहीं, ज्ञायक एक स्वभाव॥1॥

(मरहठा माधवी)

औपशमिक क्षायिक क्षयोपशम औदायिक ये भाव हैं।

प्रकटें चेतन की परिणति में किन्तु कर्म-सापेक्ष हैं॥

पूजित पंचमभाव पारिणामिक तो सहज स्वभाव है।

नित्य अचल ध्रुव की ध्रुव परिणति का नित सहजप्रवाह है॥12॥

पाँचों भावों के हैं त्रेपन भेद बताए ग्रन्थ में।

किन्तु दृष्टि का विषय बताया है अभेद निर्ग्रन्थ ने॥

भक्तिभावमय अर्द्ध समर्पित कर होऊँ निष्काम मैं।

सहज प्रकट रत्नत्रय वैभव नित भोगुँ शिवधाम मैं॥13॥

ॐ हीं श्री द्वितीय-अध्यायसमन्वित-तत्त्वार्थसूत्रग्रन्थाय नमः अनर्घ्यपदप्राप्तये
अर्द्धं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

त्रैकालिक ध्रुव भाव, पाँच भाव में श्रेष्ठ है।

रमूँ सदा निज भाव, शरणभूत चैतन्य है॥14॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपेत्/क्षिपामि)

3

अधोलोक एवं मध्यलोक स्वरूप प्रस्तुपक
* तृतीय अध्याय के लिए अर्ध्य *

(दोहा)

निज विस्मृति से प्राप्त हों, नर-नारक पर्याय।
निज दर्शन से शीघ्र हो, शाश्वत शिव पर्याय॥1॥

(वीरछन्द)

मध्य लोक में द्वीप असंख्यों ढाई द्वीप में है नर लोक।
दुर्लभ नर-भव पाकर हे जिन! लख्यूँ ज्ञान में लोकालोक॥
नरकों में भी ज्ञानी की परिणति में बहती सुखरस धार।
हे प्रभु! दुर्लभ नर-तन पाया प्रकटे भेदज्ञान सुखकार॥2॥

प्रभो! अनुभवूँ मात्र ज्ञान को ज्ञेयों से मैं भिन्न स्वरूप।
दर्श ज्ञान चारित्र अर्ध्य अर्पित कर लख्यूँ अनर्ध्य स्वरूप॥
भेदज्ञान से नरकों में भी ज्ञानी शिवमगचारी है।
अज्ञानी संयोगों को दुख-कारण लख संसारी है॥3॥

ॐ ह्लीं श्री तृतीय-अध्यायसमन्वित-तत्त्वार्थसूत्रग्रन्थाय नमः अनर्धपदप्राप्तये
अर्ध्य निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

पाते नर-पर्याय, ढाई द्वीप पर-क्षेत्र में।
अब निज क्षेत्र सुहाय, अर्पित हैं श्रद्धा-सुमन॥4॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपेत्/क्षिपामि)

देवगति स्वरूप प्रसूपक

* चतुर्थ अध्याय के लिए अर्ध्य *

(दोहा)

सुरगति हो शुभभाव से, किन्तु नहीं शिवमार्ग।
दर्श-ज्ञान अरु लीनता, मात्र एक शिवमार्ग॥1॥

(वीरछन्द)

तीव्र शुभाशुभ के फल में सुर नारक में जन्मे यह जीव।
इन भावों अरु गतियों से भी भिन्न रहे चैतन्य सदीव॥
पुण्य उदय से प्राप्त भोग की तृष्णा में दुख सहे अनन्त।
प्रभु! अब सहज अतीद्रिय सुख की कला प्राप्त करके भव-अंत॥12॥
पुण्य-पाप में भेद मानकर भटक रहा है गतियाँ चार।
चारों गतियों में दुख ही दुख यही जिनागम का है सार॥
भेद ज्ञान की कला कुशलता से निरखूँ अब अपना रूप।
दर्श-ज्ञान-चारित्र अर्ध्य अर्पित कर लखूँ अनर्ध्य स्वरूप॥13॥
ॐ ह्रीं श्री चतुर्थ-अध्यायसमन्वित-श्रीतत्त्वार्थसूत्रग्रन्थाय नमः अनर्ध्यपदप्राप्तये
अर्ध्य निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

कहते श्री जिनराय, स्वर्गों में भी सुख नहीं।
मिथ्या भाव नशाय, समकित सौरभ महकती॥4॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपेत्/क्षिपामि)

अजीव तत्त्व प्रस्तुपक

* पंचम अध्याय के लिए अर्ध्य *

(दोहा)

पाँच अचेतन द्रव्य को, निज से भिन्न सुजान।
चेतन लक्षण से सदा, हो निज की पहचान॥1॥

(हरिगीतिका)

पाँचों अचेतन द्रव्य भी उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप हैं।
स्वयं के परिणाम के कर्ता सभी सत्-रूप हैं॥
आपने उत्पाद-व्यय-ध्रुव सत्त्व का लक्षण कहा।
अतः श्रद्धा में बसी प्रभु! आपकी सर्वज्ञता॥2॥

निज-भाव का व्यय हो नहीं इसलिए वस्तु नित्य है।
अर्पित-अनर्पित कथन से सब वस्तुओं की सिद्धि है॥
यह अर्ध्य अर्पित कर प्रभो! चैतन्य में दृष्टि रखूँ।
पद-अनर्ध्य स्वरूप निज निष्काम वृत्ति को भजूँ॥3॥

ॐ ह्रीं श्री पंचम-अध्यायसमन्वित-श्रीतत्त्वार्थसूत्रग्रन्थाय नमः अनर्ध्यपदप्राप्तये
अर्ध्य निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

नहीं चेतना गन्ध, पाँच अचेतन द्रव्य में।
निज चैतन्य सुगन्ध, महके समकित सुमन में॥4॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपेत्/क्षिपामि)



आस्रव तत्त्व प्रस्तुपक

* षष्ठ अध्याय के लिए अर्द्ध *

(दोहा)

अशुचि और विपरीत ये, आस्रव हैं दुखरूप।

परम पवित्र निजात्मा, का अनुभव सुखरूप॥1॥

(विधाता : तर्ज - तुम्हारे दर्श बिन स्वामी)

शुभाशुभ के निमित से ही कर्म का आस्रव होता।
महामद मोह पी चेतन स्वयं का होश खो देता॥
आस्रव हैं अनादि से आत्मा भी अनादि से।
स्वयं को ही स्वयं भूला है अज्ञानी अनादि से॥2॥

द्रव्य आस्रव जड़ात्मक है राग चैतन्य की पर्याय।
परस्पर निमित्त-नैमित्तिक भावमय है सकल संसार॥
आस्रव भाव से निज को निहारूँ आज मैं न्यारा।
अर्द्ध अर्पण करूँ जिनवर मिटाऊँ आस्रव सारा॥3॥

ॐ ह्रीं श्री षष्ठ-अध्याय-समन्वितश्रीतत्त्वार्थसूत्रग्रन्थाय नमः अनर्धपदप्राप्तये
अर्द्ध निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

सुखमय चेतन भाव, आस्रव तो दुखरूप हैं।

रचूँ निरास्रव भाव, अर्पित हैं श्रद्धा-सुमन॥4॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपेत्/क्षिपामि)

(7)

ब्रतों का स्वरूप, भेद, भावना तथा अतिचार प्रस्तुपक

*** सप्तम अध्याय के लिए अर्ध्य ***

(दोहा)

सम्यगदर्शन पूर्वक, होंय ब्रतादिक भाव।
शिवपथ है व्यवहार से, आस्रव दुखमय भाव॥1॥

(रोला)

बारह ब्रत के अतीचार कुल साठ कहे हैं।
समकित अरु सामायिक के दश अतीचार हैं॥
निर्मल परिणति के संग ज्ञानी को शुभ होता।
सहज परिणमन निरतिचार सब ब्रत का होता॥2॥

आत्मज्ञान बिन क्रिया मात्र हो अज्ञानी को।
निश्चय अरु व्यवहार सहज ब्रत हों ज्ञानी को॥
राग-भाव से भिन्न निजातम रूप निहारूँ।
अर्ध्य समर्पित कर जिनवर पर-भाव निवारूँ॥3॥

ॐ ह्रीं श्री सप्तम-अध्यायसमन्वित-श्रीतत्वार्थसूत्रग्रन्थाय नमः अनर्घ्यपदप्राप्तये
अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

चारित-निर्मल गन्ध, महके बाह्य-ब्रतादि में।
श्रद्धा-सुमन सुगन्ध, अर्पित हैं जिन-चरण में॥4॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपेत्/क्षिपामि)

बन्ध तत्त्व प्रस्तुपक

* अष्टम अध्याय के लिए अर्द्ध *

(दोहा)

बन्ध-भाव दुखरूप हैं, यही बन्ध का ज्ञान।
निज निरखे निर्बन्ध जब, होय बन्ध की हानि॥1॥

(जोगीरासा)

मिथ्या अविरति अरु कषाय परमाद सहित उपयोगा।
सकषायी जीवों को पुद्गल कर्म-बन्ध ही होगा॥
प्रकृति प्रदेश स्थिति अनुभागी द्रव्य-बन्ध बतलाया।
बद्धस्पृष्ट रहित निज आतम चेतनरूप निहारा॥2॥

भाव-बन्ध से दुखी हुआ मैं बन्ध-रूप निज जाना।
मैं चेतन निर्बन्ध स्वरूपी ज्ञायक-भाव न जाना॥
प्रभो! बन्ध से भिन्न सदा निरखूँ निज को चिद्रूपी।
अर्द्ध समर्पित कर निज ध्याऊँ शाश्वत मुक्त स्वरूपी॥3॥

ॐ ह्रीं श्री अष्टम-अध्यायसमन्वित-श्रीतत्त्वार्थसूत्रग्रन्थाय नमः अनर्थपदप्राप्तये
अर्द्ध निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

जीव-कर्म का बन्ध, असद्भूत व्यवहार से।
महके चेतन गन्ध, बन्ध रहित परमार्थ से॥4॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपेत्/क्षिपामि)

संवर और निर्जरा तत्त्व प्रस्तुपक

* नवम अध्याय के लिए अर्द्धर्थ *

(दोहा)

शुद्धि की उत्पत्ति ही, संवर भाव सुजान।
अनुभव रस में वृद्धि हो, यह निर्जरा महान॥1॥

(अवतार : तर्ज - चौबीसों श्री जिन चन्द...)

संवर निर्जर निज भाव चेतन की लहरें।
तप समिति गुप्ति इत्यादि जिन व्यवहार कहें॥
निज में ही हो विश्रान्त चेतन में प्रतपन।
तप अन्तरंग सुखरूप मिटती राग तपन॥2॥

बारह विकल्प तपरूप है व्यवहार कथन।
शुद्धि की वृद्धि स्वरूप तप-परमार्थ वचन॥
यह अर्द्ध समर्पित नाथ निज में ही तपकर।
पाऊँ अनर्द्ध निज नाथ शाश्वत शिव सत्वर॥3॥

ॐ ह्रीं नवम-अध्यायसमन्वित-श्रीतत्त्वार्थसूत्रग्रन्थाय नमः अनर्द्धपदप्राप्तये अर्द्धं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

संवर निर्जर भाव, चेतन रस में प्रकट हों।
ध्याऊँ निज ध्रुव भाव, समकित सौरभ महकती॥4॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपेत्/क्षिपामि)

10

मोक्ष तत्त्व प्रस्तुपक

* दशम अध्याय के लिए अर्द्धर्य *

(दोहा)

द्रव्य-भाव-नोकर्म से, रहित अवस्था जान।
अशरीरी आनन्दमय, शाश्वत मोक्ष निधान॥1॥

(मरहठा माधवी)

द्रव्य-भाव नोकर्म रहित शिवपद शाश्वत सुखरूप है।
सदा मुक्त चैतन्य अनादि अनन्त एक ध्रुवरूप है॥
बन्ध-मोक्ष औपाधिक अरु निरूपाधिक चित् परिणाम हैं।
जीव सदा चैतन्य स्वरूपी सहज मुक्त ध्रुवधाम है॥2॥

हुआ कर्मक्षय ऊर्ध्व गमन कर जीव चला लोकान्त में।
अविनाशी शाश्वत सुख भोगे अब वह काल अनन्त में॥
हे जिन! अर्द्ध समर्पित करता पाऊँ शाश्वत धाम मैं।
मिटे मुक्ति पर्याय-कामना हो जाऊँ निष्काम मैं॥3॥
अँ हीं श्री दशम-अध्यायसमन्वित-तत्त्वार्थसूत्रग्रन्थाय नमः अनर्घ्यपदप्राप्तये
अर्द्ध निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

नहीं मोक्ष का वेश, निज चैतन्य स्वभाव में।
करूँ निजात्म प्रवेश, अर्पित हैं श्रद्धा-सुमन॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपेत्/क्षिपामि)

(184) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

महाधर्य

(वीरछन्द)

दश अध्यायों से शोभित, तत्त्वार्थसूत्र यह ग्रन्थ महान।
इसे समझने हेतु करें हम, नय-प्रमाण का सम्यग्ज्ञान॥
सात-तत्त्व के भेदों में है, विलसित चेतन तत्त्व महान।
प्रभो! अर्ध्य अर्पित करता हूँ, पद अनर्ध्य हो शिवसुखदान॥1॥
ॐ हीं श्री तत्त्वार्थसूत्रग्रन्थाय अनर्ध्यपदप्राप्तये महाधर्य निर्वपामीति स्वाहा।

समुच्चय महाधर्य

(दोहा)

महाशास्त्र तत्त्वार्थ का, करता हूँ गुणगान।
विषय वस्तु संक्षेप में, किंचित् करूँ बखान॥1॥

(मानव)

रत्नत्रय ही शिव पथ है, जो नय-प्रमाण से जाने।
सामान्य ज्ञान के पाँचों, भेदों का रूप पिछाने॥
औदयिक आदि भावों में, गति इन्द्रिय एवं तन में।
चैतन्य-चन्द्र ही चमके, संयोग अचेतन संग में॥2॥

सुर नारक के भेदों अरु, आवास आदि का वर्णन।
सब द्वीप समुद्रों सरिता, पर्वत आदिक का वर्णन॥
यह जीव कहाँ जन्मे अरु, तन छोड़े चतुर्गति में।
चैतन्य-चन्द्र ही चमके, इन पुद्गल संयोगों में॥3॥

सत् लक्षण द्रव्य कहा है, गुण-पर्यायों में विलसे।
उत्पाद-धौव्य-व्यय प्रतिक्षण, प्रत्येक वस्तु में होते॥
आस्रव के कारण एवं, आस्रव के भेद बताये।
चैतन्य-चन्द्र ही चमके, आस्रव घनघोर घटा में॥4॥

समकित एवं बारह व्रत, सामायिक के बतलाये।
 अतिचार सभी के सत्तर, शुभ आस्त्रव भाव दिखाये॥
 चारों प्रकार का बन्धन, दुखमय सदगुरु समझायें।
 चैतन्य-चन्द्र ही चमके, आस्त्रव बन्धन के तम में॥15॥
 संवर-निर्जरा तत्त्व के, भी भेद-प्रभेद कहे हैं।
 बाईस परिषह चारों, ध्यानों के भेद कहे हैं॥
 मुक्ति-स्वरूप ऊर्ध्व-गति, सिद्धों के भेद बताये।
 चैतन्य-चन्द्र ही चमके, बन्धन मुक्ति परिणति में॥15॥

(दोहा)

उमास्वामि मुनिराज ने, दिया तत्त्व का ज्ञान।
 अर्ध्य समर्पित मैं करूँ, पाऊँ शाश्वत धाम॥17॥
 ॐ ह्रीं श्री तत्त्वार्थसूत्रग्रन्थाय समुच्चयमहार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

जो श्री जिनमुख-कमल का वाहन है अभिराम।
 दो नय से सबकुछ कहे वाणी उसे प्रणाम॥1॥

(वीरछन्द)

गुणभूषण गणधर से विरचित श्रुतधर परम्परा से व्यक्त।
 परमागम के अर्थकथन में मन्द बुद्धि हम तो असमर्थ॥
 इष्ट प्राप्ति होती सुबोध से, बोध शास्त्र से होता है।
 और सुशास्त्रों का उद्भव भी, आप्त पुरुष से होता है॥12॥

अतः ज्ञानियों द्वारा पूज्य सदा, होते हैं आप्त प्रभो।
 किया हुआ उपकार कभी भी, नहीं भूलते सज्जन जो॥

(186) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

जो अत्यंत मनोहर शुद्ध तथा शिवपथ के कारण हैं।
भव्यों के कर्णों को अमृत दावानल को जल-सम हैं॥31॥
जैन योगियों द्वारा वन्द्य सदा ऐसे जिनराज वचन।
मन-वच-तन से नितप्रति करता मैं उन वचनों को वन्दन॥
भक्त अमर नत मुकुट रत्न से पूज्य चरण वे वीर जिनेश।
जन्म मृत्यु अरु जरा विनाशक देते अघ नाशक उपदेश॥41॥
महावीर तीर्थाधिनाथ वच सन्त जिसे उर में धरते।
सत्य शील नौका द्वारा वे पार भवोदधि को पाते॥51॥

(दोहा)

पद्मप्रभमल मुनि करें, जिनवर का गुणगान।
अर्घ्य समर्पित मैं करूँ, पाऊँ शाश्वत धाम॥61॥
ॐ हं श्री तत्त्वार्थसूत्रग्रन्थाय जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अन्तिम प्रशस्ति

(दोहा)

जिन गुरु जिनश्रुत भक्ति से, प्रेरित हुआ विधान।
पढ़ें सुनें भविजन सदा, पावें पद निर्वाण॥1॥
भाव-द्रव्य की दृष्टि से, यदि हो कोई भूल।
ध्यानाकर्षण बुध करें, शीघ्र लहूँ भव-कूल॥2॥
भक्तिभाव से रच गया, यह संक्षिप्त विधान।
व्यय हो पूर्ण विकार का, हों निर्मल परिणाम॥3॥
यथा अकर्ता हैं गुरु, उमास्वामि आचार्य।
मुझमें भी कर्तृत्व का, लेश न होय विकार॥4॥
इस रचना के काल में, ज्ञात और अज्ञात।
हुए सभी अपराध जो, क्षमा करें जिनराज॥5॥

पंच प्रभू जयवन्त हों, जिनशासन जयवन्त।
 श्रीजिन-चरण-प्रसाद से, हो विकल्प का अन्त॥6॥
 यहाँ मात्र संक्षेप में, कहा ग्रन्थ का सार।
 इस विधान के रूप में, भावों का विस्तार॥7॥
 किन्तु पूर्ण इस ग्रन्थ का, है विधान कर्तव्य।
 परिचय हो सम्पूर्ण का, करें सुनिश्चित भव्य॥8॥
 (इति पुष्पांजलि क्षिपेत्/क्षिपामि)

जाप्य मन्त्र - ॐ ह्रीं श्रीसप्ततत्त्वप्रतिपादक-तत्त्वार्थसूत्राय नमः।

(इसके पश्चात् पृष्ठ 237-238 पर दिए गए महार्घ्य एवं शान्ति पाठ पढ़ें।)

* * * * *

जिनवाणी स्तुति

धन्य-धन्य वीतराग वाणी, अमर तेरी जग में कहानी।
 चिदानन्द की राजधानी, अमर तेरी जग में कहानी ॥टेक॥
 उत्पाद-व्यय अरु ध्रौव्य स्वरूप, वस्तु बखानी सर्वज्ञ भूप।
 स्याद्वाद तेरी निशानी, अमर तेरी जग में कहानी ॥1॥
 नित्य-अनित्य अरु एक अनेक, वस्तु कथंचित् भेद-अभेद।
 अनेकान्तरूपा बखानी, अमर तेरी जग में कहानी ॥2॥
 भाव शुभाशुभ बंधस्वरूप, शुद्ध-चिदानन्दमय मुक्तिरूप।
 मारग दिखाती है वाणी, अमर तेरी जग में कहानी ॥3॥
 चिदानन्द चैतन्य आनन्द धाम, ज्ञानस्वभावी निजातम राम।
 स्वाश्रय से मुक्ति बखानी, अमर तेरी जग में कहानी ॥4॥

धन्य उमास्वामी गुरुवर...

(तर्ज : रोम रोम से निकले प्रभुवर...)

धन्य उमास्वामी गुरुवर! जग को शिवमार्ग दिखाया-2

कुन्दकुन्द के प्रथम शिष्य, तत्त्वार्थ रचा सुखकारा।

धन्य उमास्वामी...।

सप्त तत्त्व दिखलाये, सब भेद-प्रभेद बताये।

भेद-प्रभेदों में भी शुद्ध अभेद स्वरूप दिखाये॥

जैन न्याय के महा-वृक्ष का बीजभूत सुखकारा॥1॥

धन्य उमास्वामी...।

नय-प्रमाण से जाने, निज वस्तुस्वरूप पिछाने।

पाँच ज्ञान के भेदों में चेतन लक्षण पहचाने॥

पाँच भाव निज तत्त्व जीव के, कहे सुनय व्यवहारा॥2॥

धन्य उमास्वामी...।

जड़-चेतन हम जानें, उत्पाद-ध्रौव्य-व्यय मानें।

सत् लक्षण है सभी द्रव्य का गुण-पर्यययुत् जानें॥

अतः द्रव्य निज का ही कर्ता, पर का नहिं करतारा॥3॥

धन्य उमास्वामी...।

मात्र मंगलाचरण पंक्ति पर, रची आप्तमीमांसा।

अष्टशती अरु अष्टसहस्री हैं अनुपम शुभ टीका॥

राजवार्तिक श्लोकवार्तिक ग्रन्थ, मोह-क्षयकारा॥4॥

धन्य उमास्वामी...।

भव्य जीव सब आओ, मंगल विधान रचवाओ।

पूर्ण ग्रन्थ के स्वाध्याय का, शुभ संकल्प जगाओ॥

धन्य दिवस जब पूर्ण हुआ, मंगल विधान सुखकारा॥5॥

धन्य उमास्वामी...।

परिक्रमा गीत

(तर्ज : श्री सिद्धचक्र का पाठ...)

सत् तत्त्व प्रकाशनहारा...

तत्त्वार्थ सूत्र यह ग्रन्थ, मुक्ति का पन्थ, जगत हितकारा।
सत् तत्त्व प्रकाशनहारा॥

श्री कुन्द मुनि के शिष्य हुए, आचार्य उमास्वामी प्रकटे।
यह मोक्षमार्ग शुभ ग्रन्थ रचा सुखकारा, सत् तत्त्व प्रकाशनहारा।
तत्त्वार्थ सूत्र यह ग्रन्थ...।

यह सप्त तत्त्व को दिखलाता, सब भेद प्रभेद सुविरच्याता।
उपयोगमयी चैतन्य प्रकाशनहारा, सत् तत्त्व प्रकाशनहारा।
तत्त्वार्थ सूत्र यह ग्रन्थ...।

हम सप्त तत्त्व श्रद्धान करें, उसमें भूतार्थ स्वभाव लखें।
हो निर्विकल्प श्रद्धा निश्चय शिव-द्वारा, सत् तत्त्व प्रकाशनहारा।
तत्त्वार्थ सूत्र यह ग्रन्थ...।

जो भेद रूप श्रद्धान कहा, वह समकित का व्यवहार कहा।
यह निश्चय समकित का जानो सहचारा, सत् तत्त्व प्रकाशनहारा।
तत्त्वार्थ सूत्र यह ग्रन्थ...।

वन्दन कर वीर जिनेश्वर को, मुनि कुन्द-उमास्वामी गुरु को।
मंगलमय हुआ विधान जगत-हितकारा, सत् तत्त्व प्रकाशनहारा।
तत्त्वार्थ सूत्र यह ग्रन्थ...।

(190) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

श्री षट्खण्डागम / श्रुतपंचमी विधान मंगलाचरण

(अनुष्टुप्)

श्रीमत्परम-गम्भीर-स्याद्वादामोघलांछनम्।
जीयात् त्रैलोक्यनाथस्य शासनं जिनशासनम्॥1॥

(शार्दूलविक्रीडित)

सः श्रीमान् धरसेन-नाम-सुगुरुः श्री जैनसिद्धान्त-सद्-
वार्द्धिर्धुर्धुर-पुष्पदन्त-सुमुनिः श्रीभूतपूर्वो बलिः।
एते सन्मुनयो जगत्रय-हिताः स्वर्गामैरैर्चिताः
कुर्युर्मे जिनधर्मकर्मणि मतिं स्वर्गापवर्गप्रदे॥2॥

(अनुष्टुप्)

श्रीवीरसेन इत्याप्त-भट्टारक-पृथु-प्रथः।
स नः पुनातु पूतात्मा वादि-वृन्दारको मुनिः॥3॥
धवलां भारतीं तस्य कीर्तिं च शुचिनिर्मलाम्।
धवलीकृत-निःशेष-भुवनां तां नमाम्यहम्॥4॥
भूयादावीरसेनस्य वीरसेनस्य शासनम्।
शासनं वीरसेनस्य वीरेसन-कुशेशयम्॥5॥
सिद्धानां कीर्तनादन्ते यः सिद्धान्तप्रसिद्ध-वाक्।
सोऽनाद्यनन्तसन्तानः सिद्धान्तो नोऽवताच्चिरम्॥6॥

(हरिगीतिका)

श्रीयुत परम गम्भीर लक्षण स्याद्वाद अमोघ है।
जैन शासन त्रिजगपति का जगत में जयवन्त है॥1॥

सिद्धान्त-सागर श्री गुरु धरसेन-पद-पंकज नमूँ।
 मुनिवर धुरन्धर पुष्पदन्त-रु भूतबलि-पद उर धरूँ॥
 ये सभी मुनिवर त्रिजग हितकर सुर-गुणों से बन्द्य हैं।
 स्वर्ग-शिव-प्रद धर्मरूपी कर्म में मम मति धरें॥12॥
 आप्तवत् सुप्रसिद्ध हैं जो वादियों में श्रेष्ठ हैं।
 वे वीरसेन पवित्र आत्मा मुझे भी निर्मल करें॥13॥
 भारती जिनकी धवल है कीर्ति भी निर्मल अहो!
 धवल करती सकल जग को उसे मेरा नमन हो॥14॥
 वीरसेनाचार्य तक शासन जिनेश्वर वीर का।
 रचना मुनीश्वर वीर-शासन नमूँ श्री महावीर का॥15॥
 सिद्ध के गुणगान से जो प्राप्त होता अन्त में।
 सिद्धान्त कहते हैं उसे यह वचन है चिरकाल से॥16॥
 (इति पुष्पांजलिं क्षिपेत्/क्षिपामि)

गुरु स्तुति

धनि मुनिराज हमारे हैं॥ टेक॥
 सकल प्रपञ्च रहित निज में रत, परमानंद विस्तारे हैं।
 निर्मोही रागादि रहित हैं, केवल जाननहारे हैं॥11॥
 घोर परीषह उपसर्गों को, सहज ही जीतनहारे हैं।
 आत्मध्यान अग्निमाहिं जो, सकल कर्म-मल जारे हैं॥12॥
 साधैं सारभूत शुद्धातम, रत्नत्रय-निधि धारे हैं।
 तृप्ति स्वयं में, तुष्ट स्वयं में काम-सुभट संहारे हैं॥13॥
 सहज होंय गुण मूल अठाइस, नग्न रूप अविकारे हैं।
 वनवासी व्यवहार कहत हैं, निज में निवसनहारे हैं॥14॥

- ब्र. रवीन्द्रजी आत्मन्

(192) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

श्रीमद् आचार्यवर धरसेन-पुष्पदन्त-भूतबलि पूजन

स्थापना

(दोहा)

वीर जिनेश्वर को नमूँ, गुरु गौतम उर लाय।

श्री धरसेनाचार्य को बार-बार शिर नाय॥1॥

षट्खण्डागम शास्त्र का परम्परा श्रुत-ज्ञान।

पुष्पदन्त अरु भूतबलि रचना करी महान॥2॥

वीरसेन-जिनसेन ने टीका रची अपार।

पैनी प्रज्ञावन्त जन करें नित्य अवगाह॥3॥

कह न सकूँ इस ग्रन्थ की महिमा मैं मतिमन्द।

भक्ति भाव से उर बसे ग्रन्थ और निर्ग्रन्थ॥4॥

आहवानन थापन करूँ मुनि चरणन चित्त लाय।

देव-शास्त्र-गुरु भक्ति अब मुझको मुखर बनाय॥5॥

ॐ ह्रीं श्री प्रथमश्रुतस्कन्धप्रदातारः श्री धरसेन-पुष्पदन्त-भूतबलि-
मुनिवराः ! अत्र अवतरत अवतरत संवौषट् । (इति आहवानम् ।)

ॐ ह्रीं श्री प्रथमश्रुतस्कन्धप्रदातारः श्री धरसेन-पुष्पदन्त-भूतबलि-
मुनिवराः ! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः । (इति स्थापनम् ।)

ॐ ह्रीं श्री प्रथमश्रुतस्कन्धप्रदातारः श्री धरसेन-पुष्पदन्त-भूतबलि-
मुनिवराः ! अत्र मम सन्निहिताः भवत भवत वषट् । (इति सन्निधिकरणम् ।)

(इति पुष्पांजलिं क्षिपेत्/क्षिपामि)

(जोगीरासा)

धन्य मुनीश्वर परम अहिंसामय परिणति प्रकटाई।

जन्म जरा मृतु क्षय करने की कला हमें सिखलाई॥

श्री धरसेनाचार्य मुनीश्वर रत्नत्रय के धारी।

पुष्पदन्त अरु भूतबलि पद-पंकज ढोक हमारी॥

ॐ हीं श्री प्रथमश्रुतस्कन्धप्रदातृभ्यः श्री धरसेन-पुष्पदन्त-भूतबलिमुनिवरेभ्यः
जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

सत्य सुगन्धित जीवन जीते भव आताप नशाते।

शीतल वचनों को सुन भविजन परम शान्ति सुख पाते॥ श्री..॥

ॐ हीं श्री प्रथमश्रुतस्कन्धप्रदातृभ्यः श्री धरसेन-पुष्पदन्त-भूतबलिमुनिवरेभ्यः
संसारताप-विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

निज पद में है दृष्टि अखण्डित खण्डित पद नहिं चाहें।

हे अचौर्य ब्रतधारी गुरुवर! अक्षय पद आराधें॥ श्री..॥

ॐ हीं श्री प्रथमश्रुतस्कन्धप्रदातृभ्यः श्री धरसेन-पुष्पदन्त-भूतबलिमुनिवरेभ्यः
अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

परम ब्रह्म-रस-भोगी गुरुवर ब्रह्मचर्य ब्रत धारी।

हे निष्काम परम योगी गुरु तुम हो शिवमगचारी॥ श्री..॥

ॐ हीं श्री प्रथमश्रुतस्कन्धप्रदातृभ्यः श्री धरसेन-पुष्पदन्त-भूतबलिमुनिवरेभ्यः
कामबाण-विघ्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

तिल तुष मात्र संग नहिं गुरुवर सुर-पति दास तुम्हारे।

चिदानन्द रस तृप्त गुरु मम क्षुधा-रोग निरवारे॥ श्री..॥

ॐ हीं श्री प्रथमश्रुतस्कन्धप्रदातृभ्यः श्री धरसेन-पुष्पदन्त-भूतबलिमुनिवरेभ्यः
क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मनोगुप्ति के धारी गुरु मम मन-मन्दिर के वासी।

श्रुत-रवि-वचन-किरण से मेरे मोह-तिमिर को नाशी॥ श्री..॥

ॐ हीं श्री प्रथमश्रुतस्कन्धप्रदातृभ्यः श्री धरसेन-पुष्पदन्त-भूतबलिमुनिवरेभ्यः
मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

(194) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

वचन द्वार से भी पर में नहिं लक्ष्य तुम्हारा जाता।

महा-मौन-धारी गुरु-वचनों में निष्कर्म सुहाता॥

श्री धरसेनाचार्य मुनीश्वर रत्नत्रय के धारी।

पुष्पदन्त अरु भूतबलि पद-पंकज ढोक हमारी॥

ॐ हीं श्री प्रथमश्रुतस्कन्धप्रदातृभ्यः श्री धरसेन-पुष्पदन्त-भूतबलिमुनिवरेभ्यः
अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

चंचल चित्त हुआ थिर निज में तन भी निश्चल होता।

गुरु-चरणों में शिवफल पाने मैं निज शीश नवाता॥ श्री..॥

ॐ हीं श्री प्रथमश्रुतस्कन्धप्रदातृभ्यः श्री धरसेन-पुष्पदन्त-भूतबलिमुनिवरेभ्यः
मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

पंच महाब्रत तीन गुप्ति वैभव अनमोल तुम्हारा।

गुरुवर तव चरणों में बसता है अनर्थ्य पद म्हारा॥ श्री..॥

ॐ हीं श्री प्रथमश्रुतस्कन्धप्रदातृभ्यः श्री धरसेन-पुष्पदन्त-भूतबलिमुनिवरेभ्यः
अनर्थ्यपदप्राप्तये अर्थ्य निर्वपामीति स्वाहा।

(1)

श्री धरसेनाचार्य के लिए अर्थ्य

चौपाई 15 मात्रा (रोम-रोम पुलकित हो जाय...)

धन्य-धन्य धरसेनाचार्य करते निज चैतन्य विहार।

गिरि गिरनार शिखर विख्यात में करते सिद्धों से बात॥

व्याख्याप्रज्ञप्ति अंग का ज्ञान दृष्टिवाद का भी कुछ ज्ञान।

रहे सुरक्षित कैसे ज्ञान चिन्ता गुरु को कृपा-निधान॥

हुआ योग द्रुय-मुनि महान उन्हें पढ़ाया निज श्रुत-ज्ञान।

गुरु-चरणों में अर्थ्य चढ़ाय पद-अनर्थ्य दृष्टि में लाय॥

ॐ हीं श्री अंगपूर्वांग-अंशधारि-धरसेनाचार्यदिवाय अनर्थ्यपदप्राप्तये अर्थ्य
निर्वपामीति स्वाहा।

श्री षट्खण्डागम/श्रुतपंचमी विधान (195)

(2)

श्री पुष्पदन्त मुनिराज के लिए अर्घ्य

पुष्पदन्त मुनिराज महान सुरगण पूजित गुरु गुणखान।
श्री धरसेन सुगुरु सन्देश आए मुनि गिरनार प्रदेश॥
स्वयं विवेकी प्रज्ञावन्त किया शुद्ध गुरु का इक मन्त्र।
पाया श्रीगुरु से श्रुत-ज्ञान अनुभव में निज आतम-ज्ञान॥
ज्ञान किया मुनि ने लिपिबद्ध सूत्र एक सौ सततर बद्ध।
गुरु-चरणों में अर्घ्य चढ़ाय पद-अनर्घ्य दृष्टि में लाय॥
ॐ ह्रीं श्री प्रथमश्रुतस्कन्धप्रदातृ-पुष्पदन्तमुनये अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

(3)

भूतबलि मुनिराज के लिए अर्घ्य

भूतबली मुनिराज महान रत्नत्रय भूषित गुण-खान।
पुष्पदन्त संग किया विहार आए गिरि गिरनार मँझार॥
स्वयं विवेकी प्रज्ञावन्त शुद्ध कर दिया गुरु का मंत्र।
गुरु धरसेन समीप निवास प्राप्त किया श्रुतज्ञान विलास॥
वह श्रुतज्ञान किया लिपिबद्ध छह हजार सूत्रों में बद्ध।
गुरु-चरणों में अर्घ्य चढ़ाय पद-अनर्घ्य दृष्टि में लाय॥
ॐ ह्रीं श्री प्रथमश्रुतस्कन्धप्रदातृ-भूतबलिमुनये अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

(4)

श्री वीरसेन आचार्य के लिए अर्घ्य

वीरसेन आचार्य महान आर्यनन्दि गुरु थे गुण-खान।
धवल बुद्धिधारी सुविशाल अठ सौ सोलह सन शुभ काल॥

(196) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

अकटूबर महिना दिन आठ धवला टीका रची सुपाठ।

श्लोक बहतर सहस्र प्रमाण धवला में निर्मल श्रुतज्ञान॥

जयधवला भी रची महान बीस सहस्र श्लोक प्रमाण।

गुरु-चरणों में अर्घ्य चढ़ाय पद-अनर्घ्य दृष्टि में लाय॥

ॐ ह्रीं श्री प्रथमश्रुतस्कन्धटीकाकार-वीरसेनाचार्यदेवाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं
निर्वपामीति स्वाहा।

(5)

श्री गुणधर आचार्य के लिए अर्घ्य

गुणभूषण गुणधर आचार्य परिणति पाप-रहित अविकार।

श्रुतस्कन्ध प्रथम-दातार सर्वप्रथम श्रुत-रचनाकार॥

ग्रन्थ कसायपाहुड़ दातार निष्कषाय परिणति व्यापार।

पेज्जदोसपाहुड़ भी नाम वीतराग परिणति सुखधाम॥

दो सौ तेतिस गाथा-बद्ध जयधवला टीका उपलब्ध।

गुरु-चरणों में अर्घ्य चढ़ाय पद-अनर्घ्य दृष्टि में ल्याय॥

ॐ ह्रीं श्री प्रथमश्रुतस्कन्धटीकाकार-वीरसेनाचार्यदेवाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं
निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(मरहठा माधवी)

श्री धरसेनाचार्य सुगुरु विचरण करते निज ध्यान में।

अंग पाँचवें और बारवें के आंशिक श्रुतज्ञान में॥

कैसे हो यह ज्ञान सुरक्षित चिन्ता थी आचार्य को।

दक्षिण में सन्देशा भेजा भेजो दो मुनिराज को॥1॥

पुष्पदन्त अरु भूतबलि दो मुनि आए गिरनार पर।
 धैर्य बुद्धि की हुई परीक्षा सफल हुए मुनिवर प्रवर॥
 मुनिवर की अनुपम प्रतिभा लख शिक्षा दी आचार्य ने।
 छह खण्डों में किया सुरक्षित उन दोनों मुनिराज ने॥12॥
 प्रथम ग्रन्थ लिपिबद्ध हुआ था ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी अपूर्व।
 आत्मसाधनारत मुनित्रय का हम सब पर उपकार अपूर्व॥
 कलिकाल के अन्त समय तक वर्तेगा जो ज्ञान-प्रवाह।

आगम अरु अध्यात्म ग्रन्थ का यह सब संतों का उपकार॥13॥
 ॐ हीं श्री प्रथमश्रुतस्कन्धप्रदातृभ्यः श्री धरसेन-पुष्पदन्त-भूतबलिमुनिवरेभ्यः
 अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

वीरसेन आचार्य ने, टीका लिखी महान।
 धवला जयधवला अहो, करे जगत गुणगान॥4॥
 जिनवर अरु आचार्य का, है महान उपकार।
 अर्घ्य समर्पित भक्ति से, नमता बारम्बार॥5॥
 नमूँ प्रथम स्कन्ध-श्रुत, निर्मल हो श्रुतज्ञान।
 जिसमें हो शोभित सदा, अनुपम केवलज्ञान॥6॥
 (इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

सुनकर वाणी जिनवर की, महारे हर्ष हिये न समाय जी॥टेक॥
 काल अनादि की तपन बुझानी, निज निधि मिली अथाह जी॥1॥
 संशय, भ्रम और विपर्यय नाशा, सम्यक् बुद्धि उपजाय जी॥2॥
 नरभव सफल भयो अब मेरो, ‘बुधजन’ भेंटत पाय जी॥3॥

(198) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

श्री षट्खण्डागम पूजन

स्थापना

(दोहा)

वीर प्रभु गौतम गुरु को कर जोरि प्रणाम।
द्वादशांग श्रुत प्रकट हो वर्ते ऐसा ज्ञान॥

भाव सहित पूजा करूँ, षट्खण्डागम सार।
भेद-प्रभेदों में लखूँ, प्रभो! समय का सार॥

धन्य दिवस श्रुत पंचमी हुआ सुश्रुत अवतार।
सम्यक् श्रुत-आराधना कर होऊँ भव-पार॥

ॐ ह्रीं श्री षट्खण्डागमस्वरूप-प्रथम-श्रुतस्कन्ध! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
(इति आह्वानम्।)

ॐ ह्रीं श्री षट्खण्डागमस्वरूप-प्रथम-श्रुतस्कन्ध! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
(इति स्थापनम्।)

ॐ ह्रीं श्री षट्खण्डागमस्वरूप-प्रथम-श्रुतस्कन्ध! अत्र मम सन्निहितो भव भव
वषट्।
(इति सन्निधिकरणम्।)

(इति पुष्पांजलिं क्षिपेत्/क्षिपामि)

(हरिगीतिका)

सिद्धान्त ज्ञान-सुनीर निर्मल, मोह-मल क्षालित करे।

जिन-चरण में अर्पित करें, भवि जीव भव-सागर तरें॥

षट्खण्ड आगम ग्रन्थ पढ़, चेतन-अखण्ड स्वपद लखूँ।

धरसेन गुरुवर पुष्पदन्त-रु भूतबलि-पद युग नमूँ॥

ॐ ह्रीं श्री प्रथम-श्रुतस्कन्ध-स्वरूप-षट्खण्डागमग्रन्थाय जन्मजरामृत्यु-
विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

सिद्धान्त ज्ञान-सुगन्ध मलयज प्रभु-चरण अर्पित करूँ।

शुद्धात्म-आश्रित ज्ञान पाकर भवातप सब क्षय करूँ॥

षट्खण्ड आगम ग्रन्थ पढ़, चेतन-अखण्ड स्वपद लखूँ।

धरसेन गुरुवर पुष्पदन्त-रु भूतबलि पद युग नमूँ॥

ॐ ह्रीं श्री प्रथम-श्रुतस्कन्ध-स्वरूप-षट्खण्डागमग्रन्थाय संसारताप-विनाशनाय
चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

सिद्धान्त सूत्र अखण्ड मिथ्या-वादि मद खण्डित करें।

प्रभु-चरण में श्रद्धा समर्पित कर अखण्डित पद लहें॥ षट्..॥

ॐ ह्रीं श्री प्रथम-श्रुतस्कन्ध-स्वरूप-षट्खण्डागमग्रन्थाय अक्षयपदप्राप्तये
अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

सिद्धान्त-सुरभित-सुमन भविजन-भ्रमर-चित्त रमावते।

निष्काम श्रुत-आराधना कर काम-भाव विनाशते॥ षट्..॥

ॐ ह्रीं श्री प्रथम-श्रुतस्कन्ध-स्वरूप-षट्खण्डागमग्रन्थाय कामबाण-विध्वंसनाय
पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

सिद्धान्त-रस के रसिकजन को क्षुधा नहिं पीड़ित करे।

प्रभु भक्ति-रस आस्वाद कर भवरोग शीघ्र शमित करे॥ षट्..॥

ॐ ह्रीं श्री प्रथम-श्रुतस्कन्ध-स्वरूप-षट्खण्डागमग्रन्थाय क्षुधारोग-विनाशनाय
नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सिद्धान्त-दीप-प्रकाश में भवि स्व-पर भेद पिछानते।

प्रभु पद-कमल पूजा करें निज चित्-स्वरूप निहारते॥ षट्..॥

ॐ ह्रीं श्री प्रथम-श्रुतस्कन्ध-स्वरूप-षट्खण्डागमग्रन्थाय मोहान्धकार-
विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

सिद्धान्त ज्ञान-सुधूप ले ध्यानानि प्रजलित भवि करें।

निष्काम जिनवर-अर्चना कर कर्म-मल सब क्षय करें॥ षट्..॥

ॐ ह्रीं श्री प्रथम-श्रुतस्कन्ध-स्वरूप-षट्खण्डागमग्रन्थाय अष्टकर्मदहनाय धूपं
निर्वपामीति स्वाहा।

(200) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

सिद्धान्त-बोध-सुवृक्ष पर कैवल्य-फल निश्चित फलें।

प्रभु! भक्ति निर्वाछक फले भवि सहज चिन्मय सुख लहें॥४८..॥

ॐ ह्रीं श्री प्रथम-श्रुतस्कन्ध-स्वरूप-षट्खण्डागमग्रन्थाय मोक्षफलप्राप्तये फलं।

सिद्धान्त-वैभव द्रव्यश्रुत यह जगत में अनमोल है।

प्रभु! भावश्रुत में भासता निज पद अनर्घ्य अमोल है॥

षट्खण्ड आगम ग्रन्थ पढ़, चेतन-अखण्ड स्वपद लख्यँ।

धरसेन गुरुवर पुष्पदन्त-रु भूतबलि पद युग नमूँ॥

ॐ ह्रीं श्री प्रथम-श्रुतस्कन्ध-स्वरूप-षट्खण्डागमग्रन्थाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं।

अर्घ्यावलि

(दोहा)

गुरु धरसेनाचार्य के चरणों का धरि ध्यान।

पुष्पदन्त अरु भूतबलि को नित करुँ प्रणाम॥

षट्खण्डागम शास्त्र की महिमा चित् में लाय।

द्वादशांग श्रुतज्ञान को पूजूँ अर्घ्य बनाय॥

भक्तिपूर्वक मैं करुँ वर्णन अति संक्षेप।

द्वादशांग श्रुतज्ञान हो मम उर में निक्षेप॥

(इति पुष्पांजलि क्षिपामि/क्षिपेत्)

(1)

प्रथम खण्ड ‘जीवट्ठाण’ समन्वित द्वादशांग के लिए अर्घ्य

(वीरचन्द-दोहा)

पहला जीवट्ठाण खण्ड है अष्ट-नुयोग द्वार से युक्त।

सत् संख्या अरु क्षेत्र स्पर्शन काल भाव अन्तर से युक्त॥

अल्प बहुत्व और चूलिका नौ भी इसमें कही गई।

प्रकृति स्थान महा दण्डक त्रय जघन तथा उत्कृष्ट रची॥

श्री षट्खण्डागम/श्रुतपंचमी विधान (201)

सम्यक्-उत्पत्ति गति-आगति का वर्णन भी किया गया।
गुणस्थान मार्गणा कथन पद सहस-अठारह में मिलता॥

(दोहा)

श्रुतभक्ति का अर्द्ध ले, शोधूँ श्रुत का सार।
जिसके हैं ये भेद सब, वह अभेद चित् धार॥

ॐ ह्रीं श्री जीवटठाणसमन्वित-द्वादशांगश्रुतज्ञानाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्द्धं
निर्वपामीति स्वाहा।

(2)

द्वितीय खण्ड ‘खुददाबन्ध’ समन्वित द्वादशांग के लिए अर्द्ध

खण्ड दूसरा खुददा अथवा क्षुल्लक बन्ध कहा जाता।
ग्यारह अधिकारों में कर्मबन्ध भेदों की महाकथा॥
अंतर काल तथा स्वामित्व-रु भंग विचयत्रय अनुगम द्वार।
द्रव्य क्षेत्र स्पर्शन अधिगम नाना जीव-रु भागाभाग॥
अनुगम-अल्पबहुत्व ग्यारवाँ, जीव कर्म का बन्ध करे।
किन्तु शुद्धनय से यह चेतन कर्मों से नहिं कभी बँधे॥

श्रुतभक्ति का अर्द्ध ले, शोधूँ श्रुत का सार।
मैं अबद्धस्पृष्ट हूँ, पद अनर्घ्य अविकार॥

ॐ ह्रीं श्री खुददाबन्धसमन्वित-द्वादशांगश्रुतज्ञानाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्द्धं
निर्वपामीति स्वाहा।

(3)

तृतीय खण्ड ‘बन्ध-स्वामित्व विचय’ समन्वित
द्वादशांग के लिए अर्द्ध

खण्ड तृतीय बन्ध-स्वामित्व विचय नाम बुधजन ज्ञाता।
किसे कौन-सी प्रकृति बन्ध होता है अथवा नहिं होता॥

(202) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

स्वोदय और परोदय बन्धरूप प्रकृति का वर्णन है।
कर्मबन्ध सम्बन्धी सब विषयों का इसमें वर्णन है।
श्रुतभक्ति का अर्द्ध ले, शोधूँ श्रुत का सार।
मैं अबद्वस्पृष्ट हूँ, पद अनर्द्ध अविकार॥

ॐ हीं श्री बन्धस्वामित्वविचयसमन्वित-द्वादशांगश्रुतज्ञानाय अनर्द्धपदप्राप्तये
अर्द्ध निर्वपामीति स्वाहा।

(4)

चतुर्थ खण्ड ‘वेदना’ समन्वित द्वादशांग के लिए अर्द्ध

चौथा खण्ड वेदना इसमें कृति एवं वेदना कथन।
पाँच शरीरों की संघातन परिशातन कृति का वर्णन॥
नाम थापना द्रव्य ग्रन्थ गणना कारण अरु भाव कहे।
सात भेद से कृति का वर्णन किन्तु मुख्य गणना ही है॥
सोलह अधिकारों में वर्णन करें वेदना का आचार्य।
नय निक्षेप नाम अरु द्रव्य क्षेत्र काल प्रत्यय अरु भाव॥
गति स्वामित्व वेदना और अनन्तर सन्निकर्ष परिमाण।
भागाभाग-रु अल्पबहुत्व सहस सोलह पद रचे सुजान॥

श्रुतभक्ति का अर्द्ध ले, शोधूँ श्रुत का सार।
अहो! अवेदक मैं सदा, पद अनर्द्ध अविकार॥

ॐ हीं श्री वेदनाखण्डसमन्वित-द्वादशांगश्रुतज्ञानाय अनर्द्धपदप्राप्तये अर्द्ध
निर्वपामीति स्वाहा।

(5)

पंचम खण्ड ‘वर्गणा’ समन्वित द्वादशांग के लिए अर्द्ध

खण्ड पाँचवाँ नाम वर्गणा बंधनीय अधिकार प्रधान।
तेइस एवं कर्मबन्ध के योग्य वर्गणा कहीं सुजान॥

और साथ में सोलह अधिकारों में तेरह स्पर्श बखान।

दश प्रकार कर्मों का वर्णन करते ये अधिकार-महान।।

नाम थापना द्रव्य भाव से शील-स्वभाव-प्रकृति वर्णन।।

सोलह अधिकारों में करते वीरसेन आचार्य-महान।।

श्रुतभक्ति का अर्ध्य ले, शोधूँ श्रुत का सार।

मैं चिन्मय निष्कर्म हूँ, पद अनर्ध्य अविकार।।

ॐ हीं श्री वर्गणाखण्डसमन्वित-द्वादशांगश्रुतज्ञानाय अनर्ध्यपदप्राप्तये अर्ध्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

(6)

षष्ठ खण्ड ‘महाबन्ध’ समन्वित द्वादशांग के लिए अर्ध्य

भूतबलि भट्टारक ने ही महाबन्ध का रचा विधान।

प्रकृति थिति अनुभाग प्रदेश बंध का किया महा व्याख्यान।।

महा ध्वल भी कहते इसको मूल नाम सत्कर्म कहा।

अष्टादश अनुयोग द्वार से वर्णन इसमें किया गया।।

श्रुतभक्ति का अर्ध्य ले, शोधूँ श्रुत का सार।

मैं चेतन निर्बन्ध हूँ, पद अनर्ध्य अविकार।।

ॐ हीं श्री महाबन्धसमन्वित-द्वादशांगश्रुतज्ञानाय अनर्ध्यपदप्राप्तये अर्ध्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

(7)

कसायपाहुड़ समन्वित द्वादशांग के लिए अर्ध्य

ज्ञानप्रवाद पूर्व की दसवीं वस्तु महा अधिकार महान।।

तीजा प्राभृत कसायपाहुड़ का गुणधराचार्य को ज्ञान।।

पेज्ज-दोष पाहुड़ भी कहते राग-द्वेष का है विस्तार।।

हैं चौबिस अनुयोग द्वार से कहे गए पन्द्रह अधिकार।।

(204) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

श्रुतभक्ति का अर्द्ध ले, शोधूँ श्रुत का सार।

मैं अकषाय स्वरूप हूँ, पद अनर्थ अविकार।।

ॐ हीं श्री कषायपाहुडसमन्वित-द्वादशांगश्रुतज्ञानाय अनर्थपदप्राप्तये अर्थं
निर्वपामीति स्वाहा।।

(8)

पंच परमागम के लिए अर्थ

(हरिगीतिका)

कलिकाल में सर्वज्ञवत् गुरु कुन्दकुन्दाचार्य हैं।

शिवमग प्रकाशक पंच परमागम सु-रचनाकार हैं॥

नव तत्त्व में गत आत्मज्योति है समय के सार में।

ज्ञान-सुख अरु ज्ञेय का वर्णन सु-प्रवचनसार में॥

मार्ग एवं मार्ग-फल वर्णन नियम के सार में।

षट् द्रव्य और पदार्थ नौ व्याख्या पंचास्तिकाय में॥

अष्ट पाहुड़ में विविध वर्णन किया शिवमार्ग का।

ये पंच परमागम दिखाते मार्ग शिव-सुख प्राप्ति का॥

श्रुतभक्ति का अर्द्ध ले, शोधूँ श्रुत का सार।

शिव-रमणी रमनार हूँ, पद अनर्थ अविकार।।

ॐ हीं श्री पंचपरमागमसमन्वित-द्वादशांगश्रुतज्ञानाय अनर्थपदप्राप्तये अर्थं
निर्वपामीति स्वाहा।।

(9)

प्रथमानुयोग के लिए अर्थ

मन्दबुद्धि जीवों को जिनवर यह प्रथमानुयोग कहते।

पौराणिक पुरुषों के जीवन की घटना वर्णन करते॥

पुण्य-पाप का फल बतलाकर उसे दुखद बतलाते हैं।
वीतरागता सुखदायी कह निज हित रुचि जगाते हैं॥

असद्भूत व्यवहार से ही यह जानन योग्य।

भेदज्ञान की पुष्टि ही, इसमें करने योग्य॥

श्रुतभक्ति का अर्घ्य ले, शोधूँ श्रुत का सार।

निज चैतन्य स्वभाव ही, पद अनर्घ्य अविकार॥

ॐ ह्रीं श्री ‘जिनमुखोद्भूत-प्रथमानुयोगशास्त्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(10)

करणानुयोग के लिए अर्घ्य

सूक्ष्मबुद्धि जीवों को जिनवर यह करणानुयोग कहते।

कर्मप्रकृतियों से बन्धन अरु उदय आदि वर्णन करते॥

पर-आश्रित परिणाम जीव को दुखदायी बतलाते हैं।

तीन लोक रचना का भी श्री गुरुवर ज्ञान कराते हैं॥

असद्भूत व्यवहार से ही यह जीव स्वरूप।

ज्ञान-राग की भिन्नता, मात्र प्रयोजनभूत॥

श्रुतभक्ति का अर्घ्य ले, शोधूँ श्रुत का सार।

द्रव्य भाव नोकर्म बिन, पद अनर्घ्य अविकार॥

ॐ ह्रीं श्री ‘जिनमुखोद्भूत-करणानुयोगशास्त्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(11)

चरणानुयोग के लिए अर्घ्य

साधक जीवों के जीवन में होता है कैसा व्यवहार।

इसका वर्णन करते गुरुवर यह चरणानुयोग सुखकार॥

(206) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

श्रावक और श्रमण की बाह्य-क्रिया इसमें गुरु बतलाते।
किन्तु मात्र उपचरित धर्म है यह रहस्य गुरु समझाते॥

जीव क्रिया करता, कहे असद्भूत व्यवहार।
करता है निज भाव का, कहता नय परमार्थ॥
श्रुतभक्ति का अर्द्ध ले, शोधूँ श्रुत का सार।
निष्क्रिय चिन्मय तत्त्व ही, पद अनर्द्ध अविकार॥

ॐ हीं श्री ‘जिनमुखोद्भूत-चरणानुयोगशास्त्रेभ्यो अनर्द्धपदप्राप्तये अर्द्धं निर्वपामीति स्वाहा।

(12)

द्रव्यानुयोग के लिए अर्द्ध

नौ पदार्थ छह द्रव्य बताता यह द्रव्यानुयोग सुखकार।
भेदज्ञान अरु वीतरागता ही शिव-पथ कहते आचार्य॥।
मलिन और निर्मल पर्यायों का भी इसमें कथन किया।
पर्यायों से भिन्न त्रिकाली ध्रुव दृष्टि में बसा लिया॥।

आत्मज्ञान ही ज्ञान है, द्वादशांग का सार।
चिन्मय ज्ञायक भाव ही, मात्र समय का सार॥।
श्रुतभक्ति का अर्द्ध ले, शोधूँ श्रुत का सार।
ज्ञानमात्र निज भाव ही, पद अनर्द्ध अविकार॥।

ॐ हीं श्री ‘जिनमुखोद्भूत-प्रथमानुयोगशास्त्रेभ्यो अनर्द्धपदप्राप्तये अर्द्धं निर्वपामीति स्वाहा।

पूर्णार्द्ध

(जोगीरासा)

परिणामों को ध्वल बनाने ध्वलत्रयी पहचानूँ।
इक शत बासठ सहस श्लोक हैं इसकी महिमा जानूँ॥।

सोलह खण्डों में धवला टीका षट्खण्डागम की।
 श्लोक बहतर सहस रचे जय हो जय जिन आगम की॥1॥

सोलह खण्डों में जयधवला है कषायपाहुड़ की।
 वीरसेन जिनसेन सूरि की रचना साठ हजारी॥
 भूतबली कृत महाबन्ध ही महाधवल कहलाता।
 तीस सहस श्लोक रचे जो सूक्ष्म बुद्धि पढ़ पाता॥2॥

उनतालिस भागों में ये सब ग्रन्थ आज हैं मिलते।
 नय-व्यवहार कथन से ज्ञानी परमारथ को लखते॥
 परमारथ के ज्ञान-हेतु हस्तावलम्ब व्यवहारा।
 अतः बहुत कथनी इस नय की कहे जिनागम सारा॥3॥

परमागम के सारभूत निज ज्ञायक को पहचानूँ।
 उसमें ही अपनापन करके भेदों को बस जानूँ॥
 वीतरागता की पोषक है श्री जिनवर की वाणी।
 है चारों अनुयोग कथन की शैली निज कल्याणी॥4॥

(दोहा)

श्रुतभक्ति का अर्ध्य ले, शोधूँ श्रुत का सार।
 मोक्ष-महल में आइये, प्रिय चैतन्य कुमार॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोदभूत-द्वादशांगश्रुतज्ञानाय अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति
 स्वाहा।

जयमाला

(हरिगीत)

षट्खण्ड आगम ग्रन्थ की महिमा जगत-विख्यात है।
 यह प्रथम श्रुतस्कन्ध जिसमें जैनशासन व्याप्त है॥

(208) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

ज्यों चक्रवर्ती जीतते षट्खण्ड को पुरुषार्थ से।
त्यों जानकर षट् द्रव्य भविजन सुख लहें निज अर्थ से॥1॥

धरसेन गुरु कुछ अंग एवं पूर्व के ज्ञाता हुए।
गिरनार गिरि पर शुद्ध आत्म के परम ध्याता हुए॥
भूतबलि अरु पुष्पदन्त महामुनि निर्ग्रन्थ थे।
सूक्ष्म प्रज्ञा के धनी वे पथिक थे शिवपंथ के॥2॥

श्रुतज्ञान पा धरसेन गुरु से उभय मुनिवर धन्य थे।
षट् खण्ड आगम ग्रन्थ रचना कर निजात्म अनन्य थे॥
वीरसेन महामुनि टीका रची धवला अहा।
जिसका पठन कर धवल-धी से भव्य सुख पाते महा॥3॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूत-द्वादशांगश्रुतज्ञानाय अनधर्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णधर्यं
निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

श्रुत-सेवनमय अर्घ्य यह, भविजन को सुखकार।
जिन आगम अभ्यास ही, पद अनर्घ्य दातार॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

(इसके पश्चात् पृष्ठ 237-238 पर दिए गए महार्घ्य एवं शान्ति पाठ पढ़ें।)

जिनवाणी स्तुति

महिमा है, अगम जिनागम की ॥टेक ॥

जाहि सुनत जड़ भिन्न पिछानी, हम चिन्मूरति आत्म की ॥1॥

रागादिक दुख कारन जानैं, त्याग बुद्धि दीनी भ्रम की ॥2॥

ज्ञान-ज्योति जागी उर अन्तर, रुचि बाढ़ी पुनि शम-दम की ॥3॥

कर्मबंध की भई निरजरा, कारण परम पराक्रम की ॥4॥

‘भागचन्द’ शिव-लालच लाग्यो, पहुँच नहीं है जहँ जम की ॥5॥

श्री सर्वज्ञदेव विधान

पीठिका

(दोहा-हरिगीतिका)

वीतराग-सर्वज्ञ-जिन देव जगत हितकार।

सम्यक् श्रद्धा भक्ति से वंदूं बारम्बार॥

निज ज्ञान की सामर्थ्य से तुम लोक-व्यापी हो प्रभो!
किन्तु आत्मप्रदेश में ही परिणमित होते विभो॥
सब द्रव्य-गुण-पर्याय पीकर भी स्वयं में लीन हो।
कैवल्य-किरणों से प्रकाशित नाथ! त्रिभुवन पूज्य हो॥1॥

मोह-रज से रहित हो अल्पज्ञता का नाश कर।
ध्यानाग्नि में प्रभु! बाह्य-अभ्यन्तर मलिनता दाध कर॥
सूक्ष्म अरु दूरस्थ भावी-भूत प्रभु के ज्ञान में।
प्रत्यक्ष झलकें अतः प्रभु! सर्वज्ञता की सिद्धि हो॥2॥

अविरुद्ध वाणी युक्ति आगम से अतः निर्दोष हो।
आपको जो इष्ट वह नय-युक्ति से बाधित न हो॥
एकान्तवादी आपके वचनामृतों से बाह्य हैं।
आप्तत्व के अभिमान से प्रभु! वे निरन्तर दाध हैं॥3॥

कैवल्य-किरणों से प्रकाशित हे प्रभो! यह लोक है।
तो यह स्वतः ही सिद्ध होता परिणमन क्रमबद्ध है॥
यदि विश्व के परिणमन की निश्चित न होती शृंखला।
तो जानती कैसे प्रभो! यह आपकी केवल-कला॥4॥

द्रव्य के परिणमन की यह शृंखला क्रमबद्ध है।
श्रद्धान इसका जो करे निर्भार हो कर्तृत्व से॥

(210) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

कर्तृत्व का अभिमान मिटना ही प्रथम शिवपंथ है।
निज को अकर्ता ज्ञानमय जो लखे वह शिवकंत है॥5॥

(दोहा)

क्रमनियमित क्रमबद्ध हैं जग की सब पर्याय।
निर्णय हो सर्वज्ञ का दृष्टि निज में आय॥6॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

स्थापना

(रोला)

हे सर्वज्ञ जिनेश! आपकी अद्भुत महिमा।
झलकें लोकालोक ज्ञान की अनुपम गरिमा-
यही आपका ज्ञान, मात्र चैतन्य प्रकाशे।
परमारथ यह रूप ज्ञान का हमको भासे॥1॥

नाथ आपकी सम्यक् श्रद्धा हो अंतर में।
चिर मिथ्यात्व, गृहीत सभी विनशे क्षणभर में॥

प्रभो! आपकी महिमा निकट भव्य को आती।
दृष्टि तुरत ही ध्रुव ज्ञायक स्वभाव में जाती॥2॥

आत्मज्ञानमय अनुपम प्रभु सर्वज्ञ शक्ति है।
शक्ति भासती हमें हमारी यही भक्ति है॥

भक्ति हमारी हमें प्रभो! वाचाल बनाती।
भक्ति में रमते-रमते पूजन हो जाती॥3॥

(दोहा)

आहवानन करता प्रभो! मम लघु मति-श्रुतज्ञान।
समा जाए श्रुत-बिन्दु में सिन्धु केवलज्ञान॥4॥

केवल-किरणों में बसा शीतल चेतन-चन्द्र।
 मम दृष्टि में भी बसे ज्ञान-सुधा रसकन्द॥५॥
 भाव सहित पूजन करूँ हे सर्वज्ञ जिनेश!
 ध्याऊँ आप-समान ही मैं ज्ञायक परमेश॥६॥
 ॐ ह्रीं कैवल्यकला-विभूषित सर्वज्ञजिनेश्वर! अत्र अवतर
 अवतर संबौष्ट इति आहवानम्।

ॐ ह्रीं कैवल्यकला-विभूषित सर्वज्ञजिनेश्वर! अत्र तिष्ठ
 तिष्ठ ठः ठः इति स्थापनम्।

ॐ ह्रीं कैवल्यकला-विभूषित सर्वज्ञजिनेश्वर! अत्र मम
 सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

अष्टक

(जोगीरासा)

नाथ! आपका ज्ञान हमारा मिथ्यामल धो देता।
 जगत् व्यवस्थित ज्ञान हमारा जन्म मरण क्षय होता॥
 हे प्रभु! मम श्रुतज्ञान सदा अभिनंदन करे तुम्हारा।
 अहो! आपकी केवल-किरणों से चमके जग सारा॥
 ॐ ह्रीं कैवल्यकला-विभूषित सर्वज्ञजिनेश्वरेभ्यो जन्मजरा-
 मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

राग-आग से भिन्न सुशीतल चंदन ज्ञान तुम्हारा।
 गंध ज्ञान की महकी उर में भव-आताप निवारा॥
 हे प्रभु! मम श्रुतज्ञान सदा अभिनंदन करे तुम्हारा।
 अहो! आपकी केवल-किरणों से चमके जग सारा॥
 ॐ ह्रीं कैवल्यकला-विभूषित सर्वज्ञजिनेश्वरेभ्यः संसारताप-
 विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

(212) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

एकांती कर सके न खंडित अक्षय ज्ञान तुम्हारा।

ज्ञायक भाव अखंड दिखाया अक्षय निधि भंडारा॥

हे प्रभु! मम श्रुतज्ञान सदा अभिनंदन करे तुम्हारा।

अहो! आपकी केवल-किरणों से चमके जग सारा॥

ॐ ह्रीं कैवल्यकला-विभूषित सर्वज्ञजिनेश्वरेभ्यो अक्षयपद-
प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान-सुमन निष्काम आपका निजानंद रस-भोगी।

जानो सब जग पर न कामना हे अखंड उपयोगी॥

हे प्रभु! मम श्रुतज्ञान सदा अभिनंदन करे तुम्हारा।

अहो! आपकी केवल-किरणों से चमके जग सारा॥

ॐ ह्रीं कैवल्यकला-विभूषित सर्वज्ञजिनेश्वरेभ्यः कामबाण-
विध्वंसनाय पुष्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभो! ज्ञान-रस आस्वादन में परम तृप्त तुम रहते।

अखिल विश्व है ज्ञानलोक में जड़ कण एक न चखते॥

हे प्रभु! मम श्रुतज्ञान सदा अभिनंदन करे तुम्हारा।

अहो! आपकी केवल-किरणों से चमके जग सारा॥

ॐ ह्रीं कैवल्यकला-विभूषित सर्वज्ञजिनेश्वरेभ्यः क्षुधारोग-
विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वपर प्रकाशित शक्ति अखंडित केवल रवि-किरणों में।

सकल ज्ञेय प्रतिभासी होकर स्वयं प्रकाशित होते॥

हे प्रभु! मम श्रुतज्ञान सदा अभिनंदन करे तुम्हारा।

अहो! आपकी केवल-किरणों से चमके जग सारा॥

ॐ ह्रीं कैवल्यकला-विभूषित सर्वज्ञजिनेश्वरेभ्यो मोहान्धकार-
विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

ध्यान ध्येय का भेद मिटाकर ध्यानातीत अवस्था।

द्रव्य भाव नोकर्म विलय हों ऐसी सहज व्यवस्था॥

हे प्रभु! मम श्रुतज्ञान सदा अभिनंदन करे तुम्हारा।

अहो! आपकी केवल-किरणों से चमके जग सारा॥

ॐ ह्रीं कैवल्यकला-विभूषित सर्वज्ञजिनेश्वरेभ्यो अष्टकर्म-
विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सुख अनंत स्वाधीन निराकुल ज्ञान-विटप का फल है।

दृढ़ प्रतीति जागे प्रभु उर में पाऊँ अनुपम फल ये॥

हे प्रभु! मम श्रुतज्ञान सदा अभिनंदन करे तुम्हारा।

अहो! आपकी केवल-किरणों से चमके जग सारा॥

ॐ ह्रीं कैवल्यकला-विभूषित सर्वज्ञजिनेश्वरेभ्यः मोक्षफल-
प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञानमात्र में शक्ति अनंत उछलती अनुपम वैभव।

पद अनर्घ्यदायक हे जिनवर! सार्थक हो यह नर-भव॥

हे प्रभु! मम श्रुतज्ञान सदा अभिनंदन करे तुम्हारा।

अहो! आपकी केवल-किरणों से चमके जग सारा॥

ॐ ह्रीं कैवल्यकला-विभूषित सर्वज्ञजिनेश्वरेभ्यो अनर्घ्य-
पदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावलि

॥ अनंतज्ञानरूप परिणमित सर्वज्ञदेव के लिए अर्घ्य ॥

(कुंडलिया)

स्व-पर प्रकाशक ज्ञान की महिमा अपरम्पार।

ज्ञानमात्र ही परिणमे सकल ज्ञेय आकार॥

(214) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

सकल ज्ञेय-आकार ज्ञान की अद्भुत रचना।

सकल सृष्टि झलके पर उनसे रहे अछूता॥

पर्यायों में परिवर्तन की बुद्धि मिटे जब।

पर्यायों से दृष्टि हटे भासित हो स्व-पर॥

ॐ ह्रीं अनन्तज्ञान-विभूषित सर्वज्ञजिनेश्वराय अर्घ्य
निर्वपामीति स्वाहा॥11॥

॥ अनंतदर्शनरूप परिणमित सर्वज्ञदेव के लिए अर्घ्य ॥

सभी द्रव्य सत् रूप हैं सत्ता-महा बखान।

दृग् अनंत अवलोकता निराकार सामान्य॥

निराकार उपयोगमयी दृशि शक्ति अनूपम।

प्रकट रूप है चेतन का सामान्य परिणमन॥

निज-पर जड़-चेतन का भी नहिं भेद कभी भी।

सत् सामान्य स्वरूप अभेद विषय हों सब ही।

ॐ ह्रीं अनन्तदर्शन-विभूषित सर्वज्ञजिनेश्वराय अर्घ्य
निर्वपामीति स्वाहा॥12॥

॥ अनंतसुखरूप परिणमित सर्वज्ञदेव के लिए अर्घ्य ॥

ज्ञान अतींद्रिय संग ही हो आनंद अनंत।

इंद्रिय विषयों से रहित सुख अनंत विलसंत।

सुख अनंत विलसंत निराकुल जिसका लक्षण।

राग-द्रेष से रहित वीतरागी सुख प्रतिक्षण॥

दुख के कारण मोहभाव का रहा न अंकुर।

भोगें काल अनंत नाथ सुख-ज्ञान अतींद्रिय॥

ॐ ह्रीं अनन्तसुख-विभूषित सर्वज्ञजिनेश्वराय अर्घ्य
निर्वपामीति स्वाहा॥13॥

॥ अनंतवीर्यरूप परिणमित सर्वज्ञदेव के लिए अर्थ ॥

निज स्वरूप रचना करे वीर्य शक्ति सुखकार।
सुख अनंत को भोगने की यह शक्ति अपार॥

है यह शक्ति अपार अनंत गुणों में व्यापे।
गुण अनंत अपने स्वरूप में ही परिणमते॥

शक्ति अनंत नहीं कुछ भी कर सकती पर का।
अपने में परिणमे, करे निज स्वरूप रचना॥

ॐ ह्रीं अनन्तवीर्य-विभूषित सर्वज्ञजिनेश्वरेभ्यो अनर्थपद-
प्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा॥14॥

॥ वीतरागी सर्वज्ञदेव के लिए अर्थ ॥

निज स्वरूप श्रद्धान से दर्श-मोह प्रक्षीण।
क्षायिकश्रेणी गज चढ़े चरित-मोह भी क्षीण॥

चरितमोह भी क्षीण घातित्रय नष्ट हो गये।
तत्क्षण ही हे नाथ! अनंत चतुष्टय प्रकटे॥

हम निरखें प्रभु को पर प्रभु तो निज को निरखें।
धन्य आपकी वीतरागता रमते निज में॥

ॐ ह्रीं वीतरागपरिणति-विभूषित सर्वज्ञजिनेश्वरेभ्यो अनर्थ-
पदप्राप्तये अर्थं निर्वपामीति स्वाहा॥15॥

॥ हितोपदेशी सर्वज्ञदेव के लिए अर्थ ॥

भविभागन वच योगतैं बरसे अमृत-धार।
भवाताप भवि का नशे हो आनंद अपार॥

हो आनंद अपार आपकी मंगल वाणी।
सकल जगत को निजानंददायक कल्याणी॥

(216) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

हित-उपदेशी सर्वोत्तम वक्ता हे जिनवर!

मिली आपकी मंगल वाणी हम भविभागन॥

ॐ ह्रीं दिव्यध्वनि-विभूषित सर्वज्ञजिनेश्वरेभ्यो अनर्थ्यपद-
प्राप्तये अर्थ्य निर्वपामीति स्वाहा॥16॥

॥ पुण्य-लक्ष्मी विभूषित सर्वज्ञदेव के लिए अर्थ्य ॥

अनंत चतुष्टय संग में फलता पुण्य अपार।

समवसरण रचना करें इंद्र करें जयकार॥

इंद्र करें जयकार दिव्यध्वनि अनुपम खिरती।

स्याद्वाद से जग को मुक्तिमार्ग दिखाती॥

चौंतिस अतिशय आठ प्रातिहार्ये से भूषित।

औदयिकी क्रिया भी प्रभु की होती क्षायिक॥

ॐ ह्रीं चतुस्त्रिंशत्-अतिशय-विभूषित सर्वज्ञजिनेश्वरेभ्यो
अनर्थ्यपदप्राप्तये अर्थ्य निर्वपामीति स्वाहा॥17॥

विशेषार्थ

(दोहा)

प्रभु की महिमा गा रहे गुरुवर अमृतचन्द्र।

उनसे ही स्तवन करूँ कहता हूँ कुछ छन्द॥1॥

ज्ञान-अद्वैतेकांत का खंडन करते सूरि।

ज्ञान-मुकुर में ज्ञेय सब झलक रहे भरपूर॥2॥

(वीरछन्द)

निखिल विश्व प्रतिभासित जिसमें सहज विमल चैतन्य स्वभाव।

स्व-पर प्रकाश स्वरूप अकृत्रिम प्रभो आपकी चेतनकाय ॥1॥

जो उत्पाद विनाश विहीन, क्रमिक पर्याय पुंज विस्तार।
 नित्य अचल चहुँ ओर उछलता दिखता चेतन का चमत्कार॥12॥

निज से भिन्न-अभिन्न वीर्य सुख शक्ति भोगता यह चिद्रभाव।
 सहभावी निजधर्म अनन्त समूह प्रकट करता चिद्रभाव॥13॥

धर्मसमूह युक्त हो पर उपयोग मुख्य लक्षण शोभित।
 किन्तु नहीं उपयोग मात्र तुम क्योंकि निराश्रित गुण अप्रसिद्ध॥14॥

जड़ का ज्ञान न होता जड़ से चेतन से यदि नहिं उत्पन्न।
 तो निश्चित जड़-ज्ञान नष्ट होने से ज्ञान कहाँ उत्पन्न॥15॥

निज से निज में निज का वेदन है असिद्ध यदि नहिं परज्ञान।
 पर आकृति बिन निज अनुभूति कैसे कर सकता अनजान॥16॥

पर को जाने बिना कभी नहिं हो सकता है निज का ज्ञान।
 पर-रचना बिन चित् उपासना से मोहित गजवत् अनजान॥17॥

विषय और विषयी का युगपत् ज्ञान निरन्तर होता है।
 अतः अभेद-सर्वथा बाधित, भेद अबाधित होता है॥18॥

स्वयं प्रकाश्य जगत यदि होता हो तो हो, रवि हानि विहीन।
 सहज प्रकाशपुंज रवि ‘जग को करूँ प्रकाशित’ - इच्छाहीन॥19॥

हे जिनेन्द्र! जो है अनन्त पर केवल एक कला द्वारा।
 पूर्ण निराकुल रहकर जो निज-पर पदार्थ वैभव सारा ॥10॥

अनुभव प्राप्त कराया उसको ज्ञान कला से किया प्रकाश।
 तब अनुभूति मात्र तत्त्व को मैं भी अब करता हूँ प्राप्त ॥11॥

ॐ ह्रीं वस्तुस्वरूप-प्रकाशक श्री सर्वज्ञदेवाय अनर्घ्यपदप्राप्तये
 विशेषार्थं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

जो जाने सर्वज्ञ को वह जाने निज आत्म।
क्योंकि ज्ञान-तरंग में उछल रहा शुद्धात्म॥1॥
श्रद्धा हो सर्वज्ञ की वस्तु व्यवस्था जान।
सहज भक्ति उछले प्रभो! सहज हुआ गुणगान॥2॥

(मरहठा माधवी)

द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव विधि पौरुष झलके ज्ञान में।
इसीलिए प्रभु जैसा जानें वैसा सकल जहान है॥
प्रतिबंधक कारण न रहे तो कौन रोकता ज्ञान को।
विश्वव्यवस्था पूर्व सुनिश्चित हे प्रभु! यह श्रद्धान हो॥1॥
काल अनंत-अनादि प्रवाहित क्षणवर्ती पर्याय हों।
व्यय-उत्पाद सुनिश्चित उनका स्व-समय में पर्याय हो।
जब जैसी जिनमें होनी है निश्चित वे पर्याय हैं।
तोड़े कौन अखंडित माला जाने प्रभु का ज्ञान है॥2॥
होनहार होकर ही रहती अपने निश्चित काल में।
इसे बदलने का प्रयत्न ही फँसा रहा भव-जाल में॥
सहज परिणमन की स्वीकृति ही सहज मुक्ति पुरुषार्थ है।
दृष्टि अकर्ता ज्ञायक सन्मुख होती यह शिवमार्ग है॥3॥
पर्यायों की स्वतः योग्यता से होते सब कार्य हैं।
जब जैसा हो कार्य द्रव्य में तब वैसा पुरुषार्थ है॥
काललब्धि अरु होनहार हैं अटल यही हम जान लें।
कैसे हो स्वच्छंद वृत्ति जब ज्ञायक को पहचान लें॥4॥

हे सर्वज्ञ स्वरूप जिनेश्वर! आओ मम श्रद्धान में।
 तत्त्वज्ञान रस बहे निरंतर स्व-संवेदन ज्ञान में॥
 सहज प्रवाहित पर्यायों की सहज स्वीकृति ज्ञान में।
 फेरफार का नहिं विकल्प हो सहज अकर्ता भाव में॥15॥

(दोहा)

श्रद्धा में सर्वज्ञता परिणति में समभाव।
 अर्घ्य समर्पित हे प्रभो! हो भव-भाव अभाव॥15॥

ॐ ह्रीं वस्तुस्वरूप-प्रकाशक श्री सर्वज्ञदेवाय अनर्घ्यपदप्राप्तये
 जयमालापूर्णार्थं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

कलिकाल सर्वज्ञ हैं कुन्दकुन्द आचार्य।
 सिद्धि करें सर्वज्ञ की समन्तभद्राचार्य॥17॥

परवर्ती आचार्य अरु ज्ञानी करें बखान।
 भावसहित वंदन करूँ है उपकार महान॥18॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

(इसके पश्चात् पृष्ठ 237-238 पर दिए गए महार्थ एवं शान्ति पाठ पढ़ें।)

(220) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

सहज शान्ति विधान

पीठिका

(हरिगीत)

हे सहज शान्ति स्वरूप जिनवर! शरण आया आपकी।
तब शान्त छवि को निरख कर हो शान्त ज्वाला राग की॥
सुख शान्तिदायक वचन शीतल आपकी ध्वनि में खिरें।
मानो विषय-व्याकुल भविक के कर्ण में अमृत झरें॥11॥

पर-द्रव्य में जो कल्पना प्रभु! इष्ट और अनिष्ट की।
है पंच इन्द्रिय-विषय में ही कल्पना सुख मिष्ट की॥
चैतन्य ही सुख-शान्ति का अक्षय अनंत निधान है।
यह ज्ञान अरु श्रद्धान सम्यक् शान्ति का सुविधान है॥12॥

प्रभु! परम शान्ति प्राप्त करने का विधान बता दिया।
निज दृष्टि अरु निज लीनता में शान्ति-पथ दर्शा दिया॥
नासाग्र-दृष्टि शान्त मुद्रा निरख जग-जन भी प्रभो।
सुख-शान्ति का अनुभव करें यदि आपकी पहचान हो॥13॥

(दोहा)

परम शान्ति की खोज में सारा जगत अशान्त।
निर्ग्रन्थों के पंथ में है यथार्थ सुख-शान्ति॥14॥

पंच प्रभु को नमन कर उनका ही गुणगान-
करने का अवसर मिला रचकर शान्ति विधान॥15॥

इस विधान को समझ कर मिटे जगत की भ्रान्ति।
परिणति में प्रकटे प्रभो! शाश्वत सम्यक् शान्ति॥16॥

(इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

श्रीमज्जिनेन्द्र पूजन

स्थापना

(हरिगीत)

मैं सहज शान्तिस्वरूप सर्व जिनेन्द्र की पूजा करूँ।
मैं शान्त शीतल वचन उनके अल्प मति-श्रुत में धरूँ॥
निर्ग्रन्थता की भावना तब तक रहे मम चित्त में।
जब मैं स्वयं निर्ग्रन्थ हो निर्ग्रन्थ-पथ पर चल पड़ूँ॥1॥

उत्तुंग भव्य जिनालयों को भाव से बन्दूँ सदा।
अन्तर्मुखी जिनबिम्ब को दृग-ज्ञान में निरखूँ सदा॥
स्याद्वादमय जिनवचन से निज शान्ति-स्वाद चखूँ सदा।
सम्यक् सुदर्शन-ज्ञान-चारित का प्रवाह बहे सदा॥2॥

क्षेत्र ऐरावत-भरत त्रय-कालवर्ती सकल जिन।
पाँचों विदेही क्षेत्र में शाश्वत विराजें बीस जिन॥
पंच परमेष्ठी सु-छवि उर में करूँ स्थापना।
अब शान्ति का संगीत गूँजे जगत में यह भावना॥3॥

(दोहा)

सहज शान्तिदायक प्रभो! आओ दृष्टि मँझार।
उर सिंहासन राजिये करो परम उपकार॥4॥

ॐ ह्रीं सहजशान्तिप्रदर्शक-सर्वजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
(इति आह्वानम्।)

ॐ ह्रीं सहजशान्तिप्रदर्शक-सर्वजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। (इति स्थापनम्।)

ॐ ह्रीं सहजशान्तिप्रदर्शक-सर्वजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव
वषट्। (इति सन्निधिकरणम्।) (इति पुष्पांजलिं क्षिपामि/क्षिपेत्)

(222) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

(वीरछन्द)

रागादिक विकार विरहित है अतः शान्त चैतन्य स्वभाव।
स्वानुभूतिमय निर्मल जल से जन्म-मरण का करूँ अभाव॥
जिनशासन की शरण प्राप्त कर जग-जन जानें शान्तिविधान।
सहज शान्तिमय सर्व जिनेश्वर का मैं करूँ आज गुणगान॥
ॐ ह्रीं श्री सहजशान्तिप्रदर्शक-सर्वजिनेन्द्रेभ्यो जन्मजगमृत्यु-विनाशनाय
जलं निर्वपामीति स्वाहा।

द्रव्य और गुण परिणति चिन्मय राग द्वेष दुर्गन्ध विहीन।
अनुभव में जब विलसित होता भवाताप हो त्वरित विलीन॥
जिनशासन की शरण प्राप्त कर जग-जन जानें शान्तिविधान।
सहज शान्तिमय सर्व जिनेश्वर का मैं करूँ आज गुणगान॥
ॐ ह्रीं श्री सहजशान्तिप्रदर्शक-सर्वजिनेन्द्रेभ्यः संसारताप-विनाशनाय
चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

खंड खंड इन्द्रियसुख इन्द्रिय-ज्ञान करे निज शान्ति विधात।
प्रभो! अखंडित चिन्मय-रस में अक्षत सुख का हो उत्पाद॥
जिनशासन की शरण प्राप्त कर जग-जन जानें शान्तिविधान।
सहज शान्तिमय सर्व जिनेश्वर का मैं करूँ आज गुणगान॥
ॐ ह्रीं श्री सहजशान्तिप्रदर्शक-सर्वजिनेन्द्रेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान्
निर्वपामीति स्वाहा।

चिर अतृप्त इस विषय-वासना से व्याकुल हूँ महा अशांत।
स्वानुभूति की सुमन-सुरभि से हो प्रभु! काम-वासना शांत॥
जिनशासन की शरण प्राप्त कर जग-जन जानें शान्तिविधान।
सहज शान्तिमय सर्व जिनेश्वर का मैं करूँ आज गुणगान॥
ॐ ह्रीं श्री सहजशान्तिप्रदर्शक-सर्वजिनेन्द्रेभ्यः कामबाण-विध्वंसनाय
पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षुधा-व्याधि से विरहित जिन तुम स्वानुभूति रस में हो लीन।
गुण अनन्तमय ज्ञायक का रस ज्ञेय-लुब्धता करे विलीन॥

जिनशासन की शरण प्राप्त कर जग-जन जानें शान्तिविधान।

सहज शान्तिमय सर्व जिनेश्वर का मैं करूँ आज गुणगान॥

ॐ ह्रीं श्री सहजशान्तिप्रदर्शक-सर्वजिनेन्द्रेभ्यः क्षुधारोग-विध्वंसनाय
नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान-ज्योति में सदा प्रकाशित त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक भाव।

ज्ञान-दर्श उपयोग सभी का राग रहित चैतन्य स्वभाव॥

जिनशासन की शरण प्राप्त कर जग-जन जानें शान्तिविधान।

सहज शान्तिमय सर्व जिनेश्वर का मैं करूँ आज गुणगान॥

ॐ ह्रीं श्री सहजशान्तिप्रदर्शक-सर्वजिनेन्द्रेभ्यो मोहान्धकार-विनाशनाय
दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

पर-कर्तृत्व वासना से ही जग के प्राणी महा अशान्त।

ध्यान-ध्येयमय ध्रुव की धुनमय अनुभूति में शान्ति अनन्त॥

जिनशासन की शरण प्राप्त कर जग-जन जानें शान्तिविधान।

सहज शान्तिमय सर्व जिनेश्वर का मैं करूँ आज गुणगान॥

ॐ ह्रीं श्री सहजशान्तिप्रदर्शक-सर्वजिनेन्द्रेभ्यो अष्टकर्म-विध्वंसनाय
धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

इष्ट-अनिष्ट कल्पना तरु में दुखमय फल का स्वाद अशान्त।

पर-निरपेक्ष चिदानन्द अनुभव-स्वाद निराकुल शान्ति अनन्त॥

जिनशासन की शरण प्राप्त कर जग-जन जानें शान्तिविधान।

सहज शान्तिमय सर्व जिनेश्वर का मैं करूँ आज गुणगान॥

ॐ ह्रीं श्री सहजशान्तिप्रदर्शक-सर्वजिनेन्द्रेभ्यो मोक्षफल-प्राप्तये फलं
निर्वपामीति स्वाहा।

जग-वैभव का मोह तजूँ प्रभु! यही अर्द्ध अर्पित है आज।

कैसे रहे अनर्थ कामना क्योंकि शान्ति का है साप्राज्य॥

जिनशासन की शरण प्राप्त कर जग-जन जानें शान्तिविधान।

सहज शान्तिमय सर्व जिनेश्वर का मैं करूँ आज गुणगान॥

ॐ ह्रीं श्री सहजशान्तिप्रदर्शक-सर्वजिनेन्द्रेभ्यो अनर्थपदप्राप्तये अर्द्ध
निर्वपामीति स्वाहा।

(224) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

॥ अर्ध्यावलि ॥

(दोहा)

सहज शान्ति में हैं निमित जिनशासन स्तम्भ।
अभिनन्दन करके करूँ अर्ध्यावलि प्रारम्भ॥

(इति पुष्पांजलि क्षिपामि/क्षिपेत्)

...1...

पंच परमेष्ठी के लिए अर्ध्य

(रोला)

अनन्त चतुष्टय भूषित अरहन्तों को बन्दूँ।
मोक्षमार्ग के नेता जिनवर को अभिनन्दूँ॥
त्रिविध कर्ममलरहित सिद्ध मम ज्ञान-मुकुर में-
झलकें सदा, किन्तु वे प्रभु हैं स्व-चतुष्टय में॥1॥
साधु संघ के नायक श्री आचार्य-प्रवर हैं।
गुण छत्तीस सुपालक, भविजन को हितकर हैं॥
द्वादशांग के ज्ञाता श्री पाठक मुनिवर हैं।
संपूरण श्रुत-सार निजातम बोध प्रवर हैं॥2॥
शुद्धातम के साधक परम दिग्म्बर गुरु हैं।
ज्ञान ध्यान तप-लीन परिग्रह से विरहित हैं॥
ऐसे पंच प्रभु नित मेरे उर में बसते।
परम शान्त मुद्रा दर्शन को नयन तरसते॥3॥

ॐ ह्रीं श्री सहजशान्तिप्रदर्शक-पंचपरमेष्ठीभ्यो अनर्थपदप्राप्तये अर्ध्य
निर्वपामीति स्वाहा।

...2...

चौबीस तीर्थकरों के लिए अद्य

(वीरछन्द)

ऋषभ अजित सम्भव अभिनंदन परिणति में चैतन्य विलास।
सुमति पट्टम् एवं सुपाश्व जिन ज्ञानानन्द में करें विलास॥
चन्द्रकिरण-सम चन्द्रप्रभ जिन सुविधिनाथ हैं शान्तिविधान।
शीतल वचन-किरण से शीतलनाथ प्रकाशित करें निधान॥1॥

श्री श्रेयांस-रु वासुपूज्य जिन मोक्षमार्ग के नेता हैं।
विमल अनन्त-रु धर्मनाथ जिन विश्व तत्त्व के ज्ञाता हैं॥
शान्ति-कुन्थु-अर जिनवर चक्री-कामदेव सह तीर्थकर।
अन्तर्बाह्यारम्भ परिग्रह तजकर वेश दिग्म्बर धर॥2॥

मोह-मल्ल को करें पराजित मल्लिनाथ मुनिसुव्रत देव।
धर्म धुरा धारक नमि जिनवर नेमिनाथ देवों के देव॥
भव्यजनों को निज-सम करने वाले पारस पाश्व जिनेन्द्र।
महावीर प्रभु शासन-नायक शीश झुकाते हैं शत इन्द्र॥3॥

रज-मल और जरा मरणान्तक जो मुझसे हैं बन्ध सदा।
चौबीसों जिनवर तीर्थकर मेरे उर में बसें सदा॥
वर्तमान अवसर्पिणि युग में भरतक्षेत्र में ले अवतार।
जग को शान्तिविधान बताया नमन करूँ मैं बारम्बार॥4॥

(दोहा)

धन्य धन्य चौबीस जिन किया परम उपकार।

परम शान्ति शिवमार्ग का दे जग को उपहार॥५॥

ॐ ह्रीं श्री सहजशान्तिप्रदर्शक-चतुर्विंशतिजिनेन्द्रेभ्यो अनर्थपदप्राप्तये
अर्थ निर्वपामीति स्वाहा।

(226) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

...3...

विद्यमान बीस तीर्थकरों के लिए अर्घ्य

(दोहा)

पाँच विदेही क्षेत्र में सदा विराजें बीस।
तीर्थकर जिनवर प्रभो! नित्य नमाऊँ शीश॥1॥

(चौपाई)

सीमन्धर निज सीमा धारी युगमन्धर युग-धर्म प्रचारी।
दर्शन-ज्ञान बाहु-बल धारी बाहु सुबाहु त्रिलोक निहारी॥2॥
संजातक चैतन्य स्वभावी प्रभू स्वयंप्रभ प्रभा निराली।
वृषभानन का चेतन आनन वीर्य-अनन्त निराकुल आनंद॥3॥
सूर्यप्रभ की प्रभा बखानी कीर्ति-विशाल महा विज्ञानी।
वज्रधार मोहारि प्रहारी चन्द्रानन शशि-सम गुणधारी॥4॥
भद्रबाहु भद्रनि सुख-राशी भोग-भुजंग भुजंगम नाशी।
ईश्वर निज ऐश्वर्य दिखाते नेमप्रभ ध्रुव धुन में रहते॥5॥
वीरसेन हैं मोह-विजेता महाभद्र भद्रों के नेता।
नमो यशोधर यश के धारी अजितवीर्य त्रिभुवन उपकारी॥6॥

(रोला)

बीस नामधारी जिनेन्द्र वर्ते विदेह में।
जब कोई जिन सिद्धालय में जाय विराजें।।
उसी नाम के अन्य जिनेश्वर समवसरण में।
तीर्थ प्रवर्तन करते शान्ति-विधान बताते॥7॥
ॐ ह्रीं श्री सहजशान्तिप्रदर्शक-विंशतिजिनेन्द्रेभ्यो अनर्थपदप्राप्तये अर्घ्य
निर्वपामीति स्वाहा।

...4...

जिनवाणी के लिए अर्द्ध¹

(वीरछन्द)

अहंत् वचनों से प्रसूत गणधर विरचित हैं द्वादश अंग।
 विविध अनेक अर्थ गर्भित हैं धारें सुधी मुनीश्वर गण॥
 अग्र-द्वार शिवपुर का, मिलता ब्रताचार फल, ज्ञेय-प्रदीप।
 त्रिभुवन सारभूत श्रुत को मैं नितप्रति बन्दूँ भक्ति सहित॥1॥
 जिन-ध्वनि से निःसृत वचनों को इन्द्रभूति आदिक गणधर-
 सुनकर धारण करें प्रकाशित, द्वादशांग को करूँ नमन॥
 कोटि एक सौ बारह एवं लाख तिरासी अट्ठावन-
 सहस्र पाँच पद भूषित अंग-प्रविष्ट ज्ञान को करूँ नमन॥2॥
 अंग-बाह्य श्रुत में पद हैं कुल आठ करोड़ और इक लाख-
 आठ हजार एक सौ पचहत्तर पद को नित नमता माथ॥
 अरहन्तों से कहा गया जो गणधर देवों ने गूँथा।
 भक्ति सहित श्रुतज्ञान महोदधि को मैं नमस्कार करता॥3॥
 अँ हीं श्री सहजशान्तिप्रदर्शक-द्वादशांगजिनवाणीभ्यो अनर्द्धपदप्राप्तये
 अर्द्ध निर्वपामीति स्वाहा।

...5...

त्रिलोकवर्ती अकृत्रिम चैत्यालयों के लिए अर्द्ध

(रोला)

तीन लोक के कृत्रिम और अकृत्रिम सारे।
 जिनमन्दिर को नितप्रति अगणित नमन हमारे॥

1. श्रुतभक्ति का पद्यानुवाद

(228) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

उनमें जिनवर की अन्तर्मुख छवि को निरखूँ।
जिन में निज का निज में जिन-प्रतिबिम्ब निहारूँ॥1॥

अकृत्रिम जिनबिम्बों की महिमा अति प्यारी।
अकृत्रिम शुद्धात्म तत्त्व का रूप दिखाती॥
रत्नमयी जिनबिम्ब पारदर्शी अति शोभे।
मणि-स्फटिक समान स्व-पर परिणति झलकाते॥2॥

कर्मोदय रंगीन झलक चेतन में दिखती।
निर्मल मणि संयोग-निमित से रंगमय दिखती॥
ये रागादि विभाव ज्ञान-दर्पण में झलकें।
ज्ञान-मुकुर¹ को ज्ञानी छवि² से भिन्न निहारें॥3॥

अन्तर्मुख मुद्रा में ज्ञानी निज को निरखें।
निर्मल ज्ञान-स्वभावी चिन्मय शाश्वत वर्ते॥
रत्नत्रय सन्देश रत्नमय जिन-बिम्बों का।
अभिनन्दन मैं करूँ चिदानन्द प्रतिबिम्बों का॥4॥

(दोहा)

अहो! भव्य जिन-गेह में बरसे शान्ति अपार।
परिणति में बहती प्रभो! साम्य सुधा-रसधार॥5॥

ॐ ह्रीं श्री सहजशान्तिप्रदर्शक-अकृत्रिमचैत्यालयेभ्यो अनर्थपदप्राप्तये
अर्थ्य निर्वपामीति स्वाहा।

...6...

पंचमेरु एवं गजदन्त जिनालयों के लिए अर्थ्य

(रोला)

पाँच मेरु पाँचों विदेह में शाश्वत राजे।
सोलह-सोलह जिनमन्दिर की महिमा भासे॥

1. दर्पण 2. ज्ञेयाकार

रत्नमयी जिनबिम्ब एक शत आठ सुशोभित।
 इनमें निज प्रतिबिम्ब निरखकर भविजन हर्षित॥11॥
 मेरु चतुर्दिश हैं गजदन्त बीस जिनमन्दिर।
 जिनमें अन्तर्मुख मुद्रामय प्रतिमा शोभित॥
 भक्ति सहित मैं करूँ समर्पित जिन-चरणों में।
 श्रद्धा-सुमन चढ़ाऊँ दर्शन-ज्ञान-चरण में॥12॥

(वीरछन्द)

मेरु सुदर्शन विजय अचल मन्दर विद्युन्माली अभिराम।
 जम्बू धातकि पुष्करार्ध में शाश्वत उन्नत दिव्य ललाम॥
 भद्रशाल नन्दन सुमनस पाण्डुक वन की शोभा न्यारी।
 दर्शन-ज्ञान-चरित्र वीर्य आराधन भविजन को प्यारी॥13॥
 दर्शन-ज्ञान-चरित्र-वीर्य-तप आचारों का दें सन्देश।
 पूजित-पंचम-परम भाव की आराधन का दें उपदेश॥
 पंचमेरु गजदन्तों के जिनवर चरणों में करूँ नमन।
 अर्घ्य समर्पित जिन-चरणों में प्रकटे दर्शन-ज्ञान-चरण॥14॥
 ॐ ह्रीं श्री सहजशान्तिप्रदर्शक-पंचमेरु-गजदन्तजिनालयेभ्यो अनर्घ्य-
 पदप्राप्तये अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

...7...

नन्दीश्वर जिनालयों के लिए अर्घ्य

(रोला)

मध्यलोक में द्वीप आठवाँ नन्दीश्वर है।
 चारों दिशि में तेरह तेरह जिन-मन्दिर हैं।
 कोटि एक सौ त्रेसठ योजन की दूरी है।
 किन्तु हमारी परिणति में भक्ति पूरी है॥11॥

(230) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

एक-एक अंजनगिरि दधिमुख चार-चार है।
आठ-आठ रतिकर अन्तर्मुख सुखाकार हैं॥
रत्नमयी जिनबिम्ब चिदात्म भिन्न दिखाते।
मानो जग को परम शान्ति सन्देश सुनाते॥21॥

कार्तिक फागुनङ्घाढ आठ अन्तिम दिन आते।
भक्तिभाव से सुरगण भी पूजन को जाते॥
यद्यपि शक्ति नहीं नन्दीश्वर तक जाने की।
आगम-आश्रित मति श्रुत में प्रभुमूर्ति झलकती॥31॥

द्रव्य और गुण-पर्यायों से प्रभु को जानूँ।
चिन्मय परिणति में चैतन्य स्वभाव पिछानूँ॥
मोह-ग्रन्थि हो विलय जिनेश्वर के दर्शन से।
परिणति होवे धन्य चिदात्म-स्पर्शन से॥41॥

(दोहा)

निज अकृत्रिम भाव को दर्शाते जिनबिम्ब।
आओ भविजन देख लो! परम शान्त रस पिण्ड॥51॥
ॐ हीं श्री सहजशान्तिप्रदर्शक-नन्दीश्वरद्वीपस्थ-जिनबिम्बेभ्यो
अनर्थपदप्राप्तये अर्थं निर्विपामीति स्वाहा।

....8...

अन्तर्मुख मुद्रावन्त जिनबिम्बों के लिए अर्थ

(दोहा)

परिणामों की स्वच्छता के प्रतीक जिनबिम्ब।
क्योंकि इन्हीं में निरखकर निरखूँ निज चिद्बिम्ब॥11॥
सहज अकर्ता भाव का देते ये संदेश।
चिन्मय चेतनभाव ही ज्ञानी का परिवेश॥21॥

यद्यपि ये पाषाण या धातु विनिर्मित होंय।
 अन्तर्मुख मुद्रा लखें भवि मिथ्यामल धोंय॥3॥

सम्यग्दर्शन के निमित वीतराग जिनबिंब।
 स्वानुभूति में विलसता चिदानंद ध्रुव बिंब॥4॥

प्रतिमा सन्मुख हम करें जिनवर का गुणगान।
 जग जन को बतला रही देखो शान्ति-विधान॥5॥

ॐ ह्रीं श्री सहजशान्तिप्रदर्शक-सर्वजिनविम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अद्य
 निर्वपामीति स्वाहा।

...9...

रत्नत्रय धर्म के लिए अद्य

(वीरछन्द)

जैसे धन का अभिलाषी, धनवानों की सेवा करता।
 उनकी श्रद्धा और ज्ञान कर उनका पथ ही अनुसरता॥
 मात्र मुक्ति की अभिलाषा से जीवराज को मैं जानूँ।
 श्रद्धा-ज्ञान-चरित्र भाव से शिवपुर-पथ निश्चित मानूँ॥1॥

साध्यभूत निष्कर्म अवस्था इसी मार्ग से होती प्राप्त।
 अन्य मार्ग से अनुपत्ति है कहते सदा जिनेश्वर आप्त॥
 भेदों के मिश्रण में भी अनुभूति मात्र मैं ज्ञानस्वरूप।
 भेद-ज्ञान की कला कुशलता देखूँ निज चेतन चिद्रूप॥2॥

अपने को अनुभूति मात्र मैं जानूँ - ऐसी करूँ प्रतीति।
 हो निःशंक प्रवृत्ति आत्म में, साध्य-सिद्धि की यही सुरीति॥
 यह अनुभूति स्वरूप आत्मा ज्ञान-तरंगों में उछले।
 पर से है एकत्व जिसे उस मूढ़ बुद्धि को नहीं मिले॥3॥

(232) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

ज्ञानमात्र में व्याप्त चिदात्म चिन्मय परिणति में विलसे।
यथा सिन्धु जलमय लहरों में मानो आनन्द से उछले॥
उदय क्षयोपशम उपशम क्षायिक भावों को सापेक्ष लखूँ।
ज्ञानमात्र सामान्य किरण में ज्ञायक दिनकर को निरखूँ॥41॥

(दोहा)

दर्श-ज्ञान-चारित्रमय एक मुक्ति का मार्ग।
साध्य-सिद्धि की यह विधि अन्य सभी उन्मार्ग॥51॥
परम शान्ति पथ कह रहे अमृतचन्द्राचार्य।
आत्मख्याति में भर दिया समयसार का सार॥61॥
ॐ ह्रीं श्री सहजशान्तिप्रदर्शक-रत्नत्रयधर्मार्थ अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्य
निर्वपामीति स्वाहा।

...10...

दशलक्षण धर्म के लिए अर्घ्य

(रोला)

जिनशासन में धर्म कहा है साम्य भाव को।
राग-द्वेष से रहित वीतरागी स्वभाव को॥
किन्तु हमें परिचय अनादि से क्रोधादिक का।
गुरु इनके अभाव से लक्षण कहें धर्म का॥1॥
क्रोध मान माया अरु तृष्णा के अभाव में।
क्षमा मार्दव आर्जव शौच प्रकट होते हैं॥
सत्य और संयम तप त्याग अकिञ्चन संग में।
ब्रह्मचर्यमय चारित मुनिवर की परिणति में॥2॥
चारित-तरु का बीज कहा है सम्यक् श्रद्धा।
जिसे तत्त्व-अभ्यास-नीर से सींचा जाता॥

निज स्वभाव की दृष्टि पूर्वक बढ़े लीनता।
तो साधक शिवपथ पर आगे कदम बढ़ाता॥3॥

(दोहा)

क्षमा आदि दशधर्म में साम्य सुधारस पान।
जिनशासन में है यही सम्यक् शान्ति-विधान॥4॥
अँ ह्रीं श्री परमशान्तिप्रदर्शक-दशलक्षणधर्मार्थ अनर्थपदप्राप्तये अर्थ
निर्वपामीति स्वाहा।

...11...

सोलह कारण भावनाओं के लिए अर्थ

(चौपाई)

सम्यग्दर्शन के संग प्रकटे, अति विशिष्ट शुभ परिणति उछले।
कहें भावना सोलह कारण, तीर्थकर पद भी प्रकटावन॥1॥
दरशविशुद्धि मोह-मल धोती, विनय मान-दुर्भाव नशाती।
शीलवन्त नर रहें निराकुल, ज्ञानाभ्यासी पावें अनुभव॥2॥
संवेगी उत्साह बढ़ावे, दानी दान देय हरषावे।
तपसी अभिलाषा विनशावे, साधुसमाधि सुमन में लावे॥3॥
वैयावृत्ति सुधर्म सहाई, अर्हत्-भक्ति कषाय नशाई।
सूरि-भक्ति आचार बढ़ावे, पाठक-भक्ति सुश्रुत प्रकटावे॥4॥
प्रवचन-भक्ति आनंदकारी, षट् आवश्य रत्नत्रय धारी।
धर्म-प्रभाव विशुद्धि बढ़ावे, वत्सल तीर्थकर पद पावे॥5॥
सहज भावना सोलह होतीं, पुण्य प्रकृतियाँ इनसे बँधती।
क्योंकि पराश्रित रागरूप हैं, रत्नत्रय में निमित्तभूत हैं॥6॥

(234) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

(दोहा)

शुभ विकल्प ये भावना बाँधें पुण्य महान।
वीतराग परिणाम ही सम्यक् शान्ति-विधान॥7॥

ॐ ह्रीं श्री सहजशान्तिप्रदर्शकि-षोडशकारणभावनाभ्यो अनर्थ्यपदप्राप्तये
अर्थ्य निर्वपामीति स्वाहा।

...12...

निर्वाण क्षेत्रों के लिए अर्थ्य

(मरहठा माधवी)

नभ प्रदेश में पाँचों द्रव्यों की शाश्वत अवगाहना।
शुद्ध जीववत् व्योम अरूपी पर का हो स्पर्श ना॥
चौदह राजु उतंग लोक त्रय सिद्ध रहें लोकाग्र में।
तीर्थकर भी योग रोध कर जा बसते लोकान्त में॥1॥

धन्य धरा वह जहाँ ध्यान धर तीर्थकर-मुनि सिद्ध हों।
वही धरा निर्वाण क्षेत्र है जग में सदा प्रसिद्ध हों॥
भरत भूमि में सम्मेदाचल शाश्वत भू निर्वाण की।
तीर्थकर सह मुनि अनंत के शाश्वत सिद्ध प्रयाण की॥2॥

इस युग में कैलाश गिरि से सिद्ध हुए आदीश जी।
नेमीश्वर गिरनार गिरि पावापुर से महावीर जी॥
वासुपूज्य जी चम्पापुर से हुए अयोगी सिद्ध हैं।
सहज शान्ति दर्शक ये पाँचों सिद्ध भूमि सुप्रसिद्ध हैं॥3॥

(दोहा)

यद्यपि ढाई द्वीप का कण-कण भू-निर्वाण।
तीर्थकर की साधना-दर्शक क्षेत्र महान॥4॥

भविजन निज शुद्धात्म का निर्विकल्प धर ध्यान।

शाश्वत सुख का पंथ यह पायें शान्ति-विधान॥५॥

ॐ ह्रीं श्री परमशान्तिप्रदर्शक-समस्तनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो अनर्थपदप्राप्तये
अर्थं निर्विपामीति स्वाहा।

...13...

अतिशय क्षेत्रों के लिए अर्थ

(मरहठा माधवी)

गर्भ जन्म तप केवल कल्याणक जिस पावन भूमि में।

होते हैं अतिशय महान ये अतिशय क्षेत्र प्रसिद्ध हैं।।

नगर अयोध्या और बनारस कुण्डलपुरी महान हैं।

भव्यजीव इस भू पर आकर करते जिन-गुणगान हैं॥१॥

किन्तु अज्ञजन चमत्कार को ही अतिशय हैं मानते।

इनसे मनोकामना पूरी होती - ऐसा जानते॥

अणु अणु सदा स्वतन्त्र परिणमे ज्ञान ज्ञेय को जानता।

किन्तु अछूता रहे सदा यह चमत्कार चैतन्य का॥२॥

इस युग में क्रमबद्ध परिणमन और वस्तु स्वातंत्र्य का-

शिक्षण देने वाले केन्द्र अनेक यही अतिशय महा॥

कलि में ज्ञानतीर्थ ये विकसित, जिनशासन की शान हैं।

क्योंकि इन्हीं में भव्य जानते सम्यक् शान्ति-विधान हैं॥३॥

(दोहा)

वन्दन अतिशय क्षेत्र को निज महिमा पहिचान।

चमत्कार चैतन्य का जानूँ शान्ति-विधान॥४॥

ॐ ह्रीं श्री सहजशान्तिप्रदर्शक-समस्तअतिशयक्षेत्रेभ्यो अनर्थपदप्राप्तये
अर्थं निर्विपामीति स्वाहा।

जयमाला

(हरिगीत)

उपकार जिनवर का अहो! सुख-शान्ति-पथ दरशा रहे।
 कारण अशान्ति का प्रभो! मुझ अज्ञ को समझा रहे॥
 मिथ्यात्व और कषाय से हूँ दुखी प्रभु तुमने कहा।
 किन्तु पर-संयोग को ही दुक्ख कारण मानता॥1॥

यह देह ही मैं हूँ तथा मेरे कुटुम्बी जन सभी।
 संयोग सब हैं भिन्न मुझसे यह नहीं जाना कभी॥
 सारे जगत को सुखी एवं दुखी हम ही कर सकें।
 इस मान्यता से नाथ! मेरी दृष्टि पर मैं ही रहे॥2॥

और ये पर-द्रव्य ही सुख-दुक्ख मुझको दे सकें।
 यह मानने से राग-द्वेष-कषाय अग्नि सदा जले॥
 जिस तरह मैं इक वस्तु हूँ गुण और पर्यायों सहित।
 बस उस तरह सब वस्तुएँ शोभित स्वयं वैभव सहित॥3॥

कोई किसी पर-द्रव्य के परिणाम को कैसे करे?
 क्योंकि सब ही द्रव्य निज गुण-परिणमन को ही वरें॥
 कोई किसी का स्पर्श भी कर सके नहिं परमार्थ से।
 इसलिए नहिं पर-द्रव्य का कर्ता कहा प्रभु! आपने॥4॥

सब द्रव्य-गुण पर्याय को प्रभु! आप युगपत् जानते।
 तो स्वतः सिद्ध हुआ प्रभो! सब कार्य स्व-समय में हुए॥
 सब कार्य का प्रभु समय अरु पुरुषार्थ झलके ज्ञान में।
 तो कौन किस पर्याय का किस तरह कर्ता हो सके॥5॥

पर-द्रव्य के परिणाम का कर्तृत्व तो अति दूर है।
 प्रत्येक द्रव्य स्व-कार्य का कर्ता स्वयं भरपूर है॥

किन्तु निज परिणाम भी होते सहज क्रमबद्ध हैं।
 परमार्थ से परिणाम का भी नहीं कर्ता द्रव्य है॥६॥
 यह सहज दृष्टि ज्ञान ही सुख-शान्ति का आधार है।
 प्रभु! आपके वचनामृतों का एक ही यह सार है॥
 कर्तृत्व एवं विषय-सुख की वासना मेटूँ प्रभो!
 पुरुषार्थ सम्यक् शान्ति का अब सहज ही प्रकटे विभो॥७॥

(दोहा)

सम्यक् श्रद्धा ज्ञान का अर्पित है प्रभु अर्घ्य।
 सहज शान्ति सुविधान का पाऊँ पद अन्‌अर्घ्य॥८॥
 ॐ हीं श्री सहजशान्तिप्रदायक-सर्वजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये
 जयमाला-पूर्णार्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

(प्रतिदिन पूजन-समापन में इस महाऽर्थ्य और शान्ति पाठ का आनन्द लें।)

महाऽर्थ्य

(हरिगीतिका)

मैं देव श्री अरहन्त के पद-पंकजों का भ्रमर हूँ।
 मैं जन्म-मरण विमुक्त सिद्धों की शरण में अमर हूँ।
 आचार्यवर शिवपंथ में कर पकड़ कर ले जा रहे।
 पाठक हमें जिन-आगमों का सार हैं समझा रहे॥१॥
 मैं साधु-पद में साधना की भावना नित भा रहा।
 अरहंत-रवि की वचन-किरणों में निजातम लख रहा॥
 उत्तम क्षमादिक धर्म दश-विध की सदा आराधना-
 के संग में हों सहज सोलह-कारणों की भावना॥२॥
 त्रैलोक्य के कृत्रिम अकृत्रिम जिनालय की वंदना।
 निर्वाण अतिशय क्षेत्र में हो आत्मा की साधना॥

(238) लघु पंचपरमागम विधान संग्रह एवं विधानचतुष्टय

सम्यक् सुदर्शन ज्ञान चारित परिणमन में प्रकट हों।
हे नाथ! सारे जगत को सदृज्ञान हो श्रद्धान हो॥3॥

(दोहा)

सर्व पूज्य पद उर धरूँ ज्ञान-सुधा-रस धार।
स्वाश्रित निज परिणाम में प्रकटे शान्ति अपार॥4॥

ॐ ह्रीं श्री सहजशान्तिप्रदायक-सर्वपूज्यपदेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्य
निर्वपामीति स्वाहा।

शान्ति पाठ एवं क्षमा-याचना

(हरिगीतिका)

पर-द्रव्य में एकत्व अरु कर्तृत्व के अभिप्राय से।
आकुलित हूँ चिरकाल से नहिं शान्ति पर की आश से॥
राग की ज्वाला निरंतर जल रही पर्याय में।
विकट भव-वन में भ्रमा हूँ विषय-सुख की चाह में॥1॥

नासाग्र दृष्टि शान्त मुद्रा आज लखकर आपकी।
सहज ही सब विलय हों अब वासनाएँ पाप की॥
मैं शान्ति का हूँ पिण्ड आनन्दकन्द ज्ञायक भाव हूँ।
प्रभु-दर्श कर जानूँ स्वयं को मात्र चिन्मय भाव हूँ॥2॥

मैं स्वयं शान्तिस्वरूप हूँ पर्याय में भी शान्ति हो।
श्रद्धान हो सदृज्ञान हो किंचित् नहीं कुछ भ्रान्ति हो॥
हे नाथ! अब मैं आपके ही चरण-पथ पर बढ़ चलूँ।
आप-सम निज रूप लखकर आप-सी वृत्ति लहूँ॥3॥

सर्व जिनवर शान्तिदायक शान्ति-निर्झर हैं स्वयं।
इस शान्ति-निर्झर में नहायें यही भाते भाव हम॥

अज्ञान-वश अपराध प्रभु! जो ज्ञात या अज्ञात हैं।
करिए क्षमा जिनराजजी! अब नशें सब भवताप हैं॥4॥

(दोहा)

पूजन विधि सर्जित हुई, भक्तिभाव में नाथ।
किन्तु विसर्जित अब करूँ, कभी न बिछुड़े साथ॥5॥

करूँ विसर्जन मैं अतः, क्षमा चाहता नाथ।
दर्शन-ज्ञान-चरित्र में, सदा रहे तव साथ॥6॥

(नौ बार णमोकार मन्त्र के माध्यम से पंच परमेष्ठी का स्मरण करें।)

(रोला)

पूजन में भी चंचल चित्त भटकता रहता।
विषय-कषायों के निमित्त में उलझा रहता॥

विविध क्रियाकाण्डों में भी मैं चित्त रमाता।
और अनेक विकल्प-जाल जो ज्ञात न होता॥

भक्ति-रंग में रँगा हुआ प्रभु! मेरा अंतर।
किन्तु रागवश होते हैं अपराध निरन्तर॥

ज्ञान आपका सहज जानता मम अन्तर को।
मन-वच-तन से क्षमा माँगता नमूँ आपको॥

(अनुष्टुप्)

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दर्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्॥

सर्वमंगल-मांगल्यं, सर्वकल्याण-कारकम्।
प्रधानं सर्वधर्माणां, जैनं जयतु शासनम्॥

॥ सर्वज्ञदेव एवं सहज शान्ति विधान ॥

परिक्रमा गीत

(तर्ज : श्री सिद्धूचक्र का पाठ...)

सर्वज्ञदेव श्रद्धान्, शान्ति की खान, सहज सुखदाता,
यह परम शान्ति प्रकटाता।

प्रभु ज्ञान आपका अद्भुत है, समभाव आपका अनुपम है।
उपदेश आपका शाश्वत शान्तिप्रदाता, यह परमानन्द विधाता॥1॥

प्रभु की अनंत शक्तियाँ खिलीं, शाश्वत सुख-शान्ति लहर उछली।
यह द्रव्य स्वभाव निरन्तर बहता रहता, सम्यक् श्रद्धा प्रकटाता॥2॥

सब द्रव्यों की सब पर्यायें, अपने अवसर में प्रकटायें।
कैवल्य मुकुर में सहज सभी झलकाता, यह सम्यग्ज्ञान प्रदाता॥3॥

जो होना वह निश्चित होता, उसको नहिं कोइ बदल सकता।
अपने स्वकाल में सहज परिणमन होता, कर्तृत्व भाव विनशाता॥4॥

चैतन्य-सिन्धु की एक लहर, कैवल्य प्रकाशे निज अरु पर।
वह ज्ञान स्वयं का चित् स्वरूप दर्शाता, दृष्टि में ज्ञायक आता॥5॥

कोई न किसी का करता है, सब कार्य सहज ही होता है।
उस समय सहज पुरुषार्थ स्वयं हो जाता, आनन्दामृत बरसाता॥6॥

गुण द्रव्य और पर्यायमयी, प्रभु का स्वरूप चैतन्यमयी।
जो जाने वह निर्भर सहज हो जाता, शाश्वत शिव-सुख विलसाता॥7॥

(मंगल कलश स्थापना एवं अन्य अवसरों पर भी उपयोगी)

पण्डित अभयकुमार जैन

जन्म	- 17 जुलाई 1952
जन्मस्थान	- जबलपुर (म.प्र.)
शिक्षा	- एम. कॉम, जैनदर्शनाचार्य

सन् 1968 से 1980 तक आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी का प्रतिवर्ष स्वर्णपुरी में प्रत्यक्ष समागम।

कार्य -

- * सन् 1981 से 1998 तक श्री टोडरमल स्मारक भवन, जयपुर में अध्यापन
- * 1998 से 2004 तक छिंदवाड़ा में रहकर तत्त्वप्रचार।
- * 2004 से निरन्तर देवलाली में रहकर तत्त्वप्रचार।
- * 1999 से 2011 तक प्रतिवर्ष अमेरिका, लन्दन, कनाडा इत्यादि अनेक स्थानों पर प्रवचनार्थ यात्राएँ।

विशेष - भक्ति सरोवर में आध्यात्मिक गीतों का लेखन एवं संकलन।

आगम पद्यानुवाद -

1. आत्मानुशासन 2. लघु तत्त्वस्फोट 3. पंचास्तिकाय 4. कार्तिकेयानुप्रेक्षा
5. भगवती आराधना 6. पद्मनन्दी पंचविंशतिका 7. पुरुषार्थ सिद्धध्युपाय
8. रत्नकरण्ड श्रावकाचार 9. उपदेश सिद्धान्त रत्नमाला 10. दशभक्ति संग्रह
11. समयसार कलश 12. प्रवचनसार कलश 13. नियमसार कलश 14. पंचास्तिकाय कलश
- 15-19. पंच परमागम ग्रन्थ 20. तत्त्वार्थसूत्र 21. रत्नत्रय विधान 22. द्रव्य संग्रह 23. परीक्षामुख 24. आप्तपरीक्षा 25. पंचाध्यायी 26. परमात्मप्रकाश 27. पाहुड दोहा
28. आराधनासार 29. स्वरूप संबोधन 30. परमानन्द स्तोत्र

स्वतन्त्र कृतियाँ -

1. क्रिया, परिणाम और अभिप्राय 2. क्रमबद्धपर्याय निर्देशिका 3. नय-रहस्य विधान रचना -

पाँचों परमागम एवं तत्त्वार्थ के वृहद् विधान-लघु विधान, षट्खण्डागम-श्रुतपंचमी विधान, सर्वज्ञदेव विधान, सहज शान्ति विधान, लघुतत्त्वस्फोट विधान

- * छहढाला, मोक्षमार्ग प्रकाशक, आत्मानुशासन, लघुतत्त्व स्फोट, नय-रहस्य, समयसार, प्रवचनसार, अष्टपाहुड़ आदि ग्रन्थों के पंक्तिबद्ध एवं क्रमबद्धपर्याय, क्रिया-परिणाम-अभिप्राय आदि विषयों के लगभग 3000 पंक्तिबद्ध प्रवचन यूट्यूब Pt. Abhay Ji Devlali चैनल पर एवं टेलीग्राम पर उपलब्ध हैं।